।। अथ श्रीसाईसच्चरित।। ।। अध्याय ८ ।।

मानव जन्म का महत्त्व, श्रीसाईबाबा की भिक्षावृत्ति, बायजाबाई की सेवा- शुश्रूषा, श्रीसाईबाबा का शयनकक्ष, खुशालचन्द पर प्रेम।

जैसा कि गत अध्याय में कहा गया है, अब श्री हेमाडपन्त मानव जन्म की महत्ता को विस्तृत रुप में समझाते हैं। श्रीसाईबाबा किस प्रकार भिक्षा उपार्जन करते थे, बायजाबाई उनकी किस प्रकार सेवा-शुश्रूषा करती थीं, वे मस्जिद में तात्या कोते और म्हालसापति के साथ किस प्रकार शयन करते तथा खुशालचन्द पर उनका कैसा स्नेह था, इसका आगे वर्णन किया जाएगा।

मानव जन्म का महत्त्व

इस विवित्र संसार में ईश्वर ने लाखों प्राणियों (हिन्दू शास्त्र के अनुसार ८४ लाख योनियों) को उत्पन्न किया है (जिनमें देव, दानव, गन्धर्व, जीवजन्तु और मनुष्य आदि सम्मिलित हैं), जो स्वर्ग, नरक, पृथ्वी, समुद्र तथा आकाश में निवास करते और भिन्न-भिन्न धर्मो का पालन करते हैं। इन प्राणियों में **जिनका पुण्य प्रबल है, वे स्वर्ग में निवास करते और अपने सत्कृत्यों का फल भोगते हैं। पुण्य के क्षीण होते ही वे फिर निम्न स्तर में आ जाते हैं और वे प्राणी, जिन्होंने पाप या दुष्कर्म किए हैं, नरक को जाते और अपने कुकर्मो का फल भोगते हैं। जब उनके पाप और पुण्यों का समन्वय हो जाता है, तब उन्हें मानव-जन्म और मोक्ष प्राप्त करने का अवसर प्राप्त होता है। जब पाप और पुण्य दोनों नष्ट हो जाते है, तब वे मुक्त हो जाते हैं।** अपने कर्म तथा प्रारब्ध के अनुसार ही आत्माएँ जन्म लेतीं या काया-प्रवेश करती हैं।

मनुष्य शरीर अनमोल

यह सत्य है कि समस्त प्राणियों में चार बातें एक समान हैं - आहार, निद्रा, भय और मैथुन । मानव प्राणी को ज्ञान एक विशेष देन है, जिसकी सहायता से ही वह ईश्वर- दर्शन कर सकता है, जो अन्य किसी योनि में सम्भव नहीं। यही कारण है कि देवता भी मानव योनि से ईर्ष्या करते हैं तथा पृथ्वी पर मानव-जन्म धारण करने के हेतु सदैव लालायित रहते हैं, जिससे उन्हें अंत में मुक्ति प्राप्त हो।

किसी-किसी का ऐसा भी मत है कि मानव-शरीर अति दोषयुक्त है। यह कृमि, मज्जा और कफ से परिपूर्ण, क्षण-भंगुर, रोग-ग्रस्त तथा नश्वर है। इसमें कोई संदेह नहीं कि यह कथन अंशतः सत्य है। परन्तु इतना दोषपूर्ण होते हुए भी मानव-शरीर का मूल्य अधिक है, क्योंकि ज्ञान की प्राप्ति केवल इसी योनि में संभव है। मानव शरीर प्राप्त होने पर ही तो ज्ञात होता है कि यह शरीर नश्वर और विश्व परिवर्तनशील है और इस प्रकार धारणा कर इन्द्रिय-जन्य विषयों को तिलांजलि देकर तथा सत्-असत् का विवेक कर ईश्वर-साक्षात्कार किया जा सकता है। इसलिए यदि हम शरीर को तुच्छ और अपवित्र समझ कर उसकी उपेक्षा करें तो हम ईश्वर दर्शन के अवसर से वंचित रह जाएंगे। यदि हम उसे मूल्यवान समझ कर उसका मोह करेंगे तो हम इन्दिय-सुखों की ओर प्रवृत्त हो जाएंगे और तब हमारा पतन भी सुनिश्चित ही है।

इसलिये उचित मार्ग, जिसका अवलम्बन करना चाहिए, यह हैं कि न तो देह की उपेक्षा करो और न ही उसमें आसत्कि रखो। केवल इतना ही ध्यान रहे कि किसी घुडसवार का अपनी यात्रा में अपने घोडे पर तब तक ही मोह रहता है, जब तक वह अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच कर लौट न आए।

इसलिए ईश्वर- दर्शन या आत्मसाक्षात्कार के निमित्त शरीर को सदा ही लगाए रखना चाहिए, जो जीवन का मुख्य ध्येय है। ऐसा कहा जाता है कि अनेक प्राणियों की उत्पत्ति करने के पश्चात् भी ईश्वर को संतोष नहीं हुआ;

कारण यह है कि कोई भी प्राणी उसकी अलौकिक रचना और सृष्टि को समझने में समर्थ न हो सका और इसी कारण उसने एक विशेष प्राणी अर्थात् मानव जाति की उत्पत्ति की और उसे ज्ञान की विशेष सुविधा प्रदान की। जब ईश्वर ने देखा कि मानव उसकी लीला, अद्भुत रचनाओं तथा ज्ञान को समझने के योग्य है, तब उन्हें अति हर्ष एवं सन्तोष हुआ। (भागवत स्कंध ११-९-२८ के अनुसार)। इसलिए मानव जन्म प्राप्त होना बड़े सौभाग्य का सूचक है। उच्च ब्राह्मण कुल में जन्म लेना तो परम सौभाग्य का सूचक है। परन्तु श्रीसाई-चरणाम्बुजों में प्रीति और उनकी शरणागति प्राप्त होना इन सभी में अति श्रेष्ठ है।

मानव का प्रयत्न

इस संसार में मानव-जन्म अति दुर्लभ है। हर मनुष्य की मृत्यु तो निश्चित ही है और वह किसी भी क्षण उसका आलिंगन कर सकती है। ऐसी ही धारणा कर हमें अपने ध्येय की प्राप्ति में सदैव तत्पर रहना चाहिए। जिस प्रकार खोए हुए राजकुमार की खोज में राजा प्रत्येक सम्भव उपाय प्रयोग में लाता है, इसी प्रकार किंचित् मात्र भी विलंब न कर हमें अपने अभीष्ट की सिद्धि के हेतु शीघ्रता करनी ही सर्वथा उचित है। अतः पूर्ण लगन और उत्सुकतापूर्वक अपने ध्येय, आलस्य और निद्रा को त्याग कर हमें ईश्वर का सर्वदा ध्यान रखना चाहिए। यदि हम ऐसा न कर सकें तो हमें पशुओं के स्तर पर ही अपने को समझना पड़ेगा।

कैसे प्रवृत्त होना?

अधिक सफलतापूर्वक और सुलभ साक्षात्कार को प्राप्त करने का एकमात्र उपाय है- किसी योग्य संत या सद्गुरु के चरणों की शीतल छाया में आश्रय लेना, जिसे कि ईश्वर-साक्षात्कार हो चुका हो । जो लाभ धार्मिक व्याख्यानों के श्रवण करने और धार्मिक ग्रन्थों के अध्ययन करने से प्राप्त नहीं हो सकता, वह इन उच्च आत्मज्ञानियों की संगति से सहज ही में प्राप्त हो जाता है। जो प्रकाश हमें सूर्य से प्राप्त होता है, वैसा विश्व के समस्त तारे भी मिल जाए तो भी नहीं दे सकते। इसी प्रकार जिस आध्यत्मिक ज्ञान की उपलब्धि हमें सद्गुरु की कृपा से हो सकती है, वह गन्थों और उपदेशों से किसी प्रकार संभव नहीं है। उनकी प्रत्येक गतिविधि, मृदु-भाषण, गुह्य उपदेश,क्षमाशीलता, स्थिरता, वैराग्य, दान और परोपकारिता, मानव शरीर का नियंत्रण, अहंकार-शून्यता आदि गुण, जिस प्रकार भी वे इस पवित्र मंगल-विभूति द्वारा व्यवहार में आते हैं, सत्संग द्वारा भक्त लोगों को उसके प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं। इससे मस्तिष्क की जागृति होती तथा उत्तरोत्तर आध्यात्मिक उन्नति होती रहती है। श्री साईबाबा इसी प्रकार के एक संत या सद्गुरु थे। यद्यपि वे बाह्यरुप से एक फकीर का अभिनय करते थे, **परन्तु वे सदैव आत्मलीन रहते थे। वे समस्त प्राणियों से प्रेम करते और उनमें भगवत्-दर्शन का अनुभव करते थे।** सुखों का उनको कोई आकर्षण न था और न वे आपत्तियों से विचलित होते थे। उनके लिए अमीर और फकीर दोनों ही एक समान थे। जिनकी केवल कृपा से भिखारी भी राजा बन सकता था, वे शिरडी में द्वार-द्वार घूम कर भिक्षा उपार्जन किया करते थे। यह कार्य वे इस प्रकार करते थे-

बाबा की भिक्षावृत्ति

शिरडीवासियों के भाग्य की कौन कल्पना कर सकता है कि जिनके द्वारपर परब्रह्म भिक्षुक के रुप में खड़े रहकर पुकार करते थे, '' ओ माई। एक रोटी का टुकडा मिले'' और उसे प्राप्त करने के लिए अपना हाथ फैलाते थे। एक हाथ में वे सदा 'टमरेल' लिए रहते तथा दूसरे में एक ' झोली' । कुछ गृहों में तो वे प्रतिदिन ही जाते और किसी-किसी के द्वारपर केवल फेरी ही लगाते थे। वे साग, दूध या छाँछ आदि पदार्थ तो टिनपाट में लेते तथा भात व रोटी आदि अन्य सूखी वस्तुएँ झोली में डाल लेते थे। बाबा की जिह्वा को कोई स्वाद-रुचि न थी, क्योंकि उन्होंने उसे अपने वश में कर लिया था। इसलिए वे भिन्न-भिन्न वस्तुओं के स्वाद की चिन्ता क्यों करते ? जो कुछ भी भिक्षा में उन्हें मिल जाता, उसे ही वे मिश्रित कर सन्तोषपूर्वक ग्रहण करते थे।

अमुक पदार्थ स्वादिष्ट है या नहीं, बाबा ने इस ओर कभी ध्यान ही न दिया, मानो उनकी जिह्वा में स्वाद बोध ही न हो। वे केवल मध्याह्न तक ही भिक्षा-उपार्जन करते थे। यह कार्य बहुत अनियमित था। किसी दिन तो वे छोटी सी फेरी ही लगाते तथा किसी दिन बारह बजे तक। वे एकत्रित भोजन एक कुण्डी में डाल देते, जहाँ कुत्ते, बिल्लियाँ, कौएं आदि स्वतंत्रतापूर्वक भोजन करते थे। बाबा ने उन्हे कभी नहीं भगाया। एक स्त्री भी, जो मस्जिद में झाडू. लगाया करती थी,रोटी के दस-बारह टुकडे उठाकर अपने घर ले जाती थी, परन्तु किसी ने कभी उसे नही रोका । जिन्होंने स्वप्न में भी बिल्लियों और कुत्तों को कभी दुत्कार कर नहीं भगाया, वे भला निस्सहाय गरीबों को

रोटी के कुछ टुकडों को उठाने से क्यों कर रोकते ? ऐसे महान पुरुष का जीवन धन्य है। शिरडीवासी तो पहलेपहले उन्हें केवल एक 'पागल' ही समझते थे और वे शिरडी में इसी नाम से विख्यात भी हो गए थे। जो भिक्षा के कुछ टुकड़ों पर निर्वाह करता हो भला उसका कोई आदर कैसे करता? परंतु ये तो उदार हृदय, त्यागी और धर्मात्मा थे। यद्यपि वे बाहर से चंचल और अशान्त प्रतीत होते थे, परन्तु अन्तःकरण से दृढ़ और गंभीर थे। उनका मार्ग गहन तथा गूढ था। फिर भी ग्राम में कुछ ऐस श्रद्धावान् और सौभाग्यशाली व्यक्ति थे, जिन्होंने उन्हें पहचान कर एक महान् पुरुष माना । ऐसी ही एक घटना नीचे दी जाती है।

बायजाबाई की सेवा

तात्या कोते की माता, जिनका नाम बायजाबाई था, दोपहर के समय एक टोकरी में रोटी और भाजी लेकर जंगल को जाया करती थीं। वे जंगल में कोसों दूर जातीं और बाबा को ढूँढकर उनके चरण पकडती थीं । बाबा तो शान्त और ध्यानमग्न बैठे रहते थे। वे एक पत्तल बिछाकर उस पर सब प्रकार के व्यंजनादि जैसे-रोटी, साग आदि परोसतीं और बाबा से भोजन कर लेने के लिए आग्रह करतीं। उनकी सेवा तथा श्रद्धा की रीति बड़ी ही विलक्षण थी- प्रतिदिन दोपहर को जंगल में बाबा को ढूँढना और भोजन के लिए आग्रह करना। उनकी इस सेवा और उपासना की स्मृति बाबा को अपने अन्तिम क्षणों तक बनी रही। उनकी सेवा का ध्यान कर बाबा ने उनके पुत्र को बहुत लाभ पहुँचाया । माँ और बेटे दोनों की ही फकीर पर दृढ़ निष्ठा थी। उन्होंने बाबा को सदैव ईश्वर के समान ही पूजा। बाबा उनसे कभी-कभी कहा करते थे कि '' फकीरी ही सच्ची अमीरी है। उसका कोई अन्त नहीं। जिसे अमीरी के नाम से पुकारा जाता है, वह शीघ्र ही लुप्त हो जाने वाली है।'' कुछ वर्षो के अनन्तर बाबा ने जंगल में विचरना त्याग दिया। वे गाँव में ही रहने और मस्जिद में ही भोजन करने लगे। इस कारण बायजाबाई को भी उन्हें जंगल में ढूँढ़ने के कष्ट से छुटकारा मिल गया।

तीनों का शयन-कक्ष

वे सन्त पुरुष धन्य हैं, जिनके हृदय में भगवान वासुदेव सदैव वास करते हैं। वे भक्त भी भाग्यशाली हैं, जिन्हें उनका सान्निध्य प्राप्त होता है। ऐस ही दो भाग्यशाली भक्त थे (१) तात्या कोते पाटील और (२) भगत म्हालसापति। दोनों ने बाबा के सान्निध्य का सदैव पूर्ण लाभ उठाया। बाबा दोनों पर एक समान प्रेम रखते थे। ये तीनों महानुभाव मस्जिद में अपने सिर पूर्व, पश्चिम तथा उत्तर की ओर करते और केन्द्र में एक दूसरे के पैर से पैर मिलाकर शयन किया करते थे। बिस्तर में लेटे-लेटे ही वे आधी रात तक प्रेमपूर्वक वार्त्तालाप और इधर-उधर की चर्चाएँ किया करते थे। यदि किसी को भी निद्रा आने लगती तो दूसरा उसे जगा देता था। यदि तात्या खर्राटे लेन लगते तो बाबा शीघ्र ही उठकर उसे हिलाते और सिर पकड़ कर जोर से दबाते थे। यदि कहीं वह म्हालसापति हुए तो उन्हें भी अपनी ओर खींचते और पैरों पर धक्का देकर पीठ थपथपाते थे। इस प्रकार तात्या ने १४ वर्षो तक अपने माता-पिता को गृह ही पर छोड़कर बाबा के प्रेमवश मस्जिद में निवास किया। कैसे सुहाने दिन थे वे ? उनकी क्या कभी विस्मृति हो सकती है? उस प्रेम का क्या कहना? बाबा की कृपा का मूल्य कैसे आँका जा सकता था? पिता की मृत्यु होने पश्चात् तात्या पर घरबार की जिम्मेदार आ पड़ी, इसलिए वे अपने घर जाकर रहने लगे।

राहाता निवासी खुशालचन्द

शिरडी के गणपत तात्या कोते को बाबा बहुत ही चाहते थे। वे राहाता के मारवाडी सेठ श्री. चंद्रभान को भी बहुत प्यार करते थे। सेठजी का देहान्त होने के उपरांत बाबा उसके भतीजे खुशालचन्दको भी अधिक प्रेम करते थे। वे उनके कल्याण की दिनरात फिक्र किया करते थे। कभी बैलगाडी में तो कभी ताँगे में वे अपने अंतरंग मित्रों के साथ राहाता को जाया करते थे । ग्रामवासी बाबा के गाँव के फाटक पर आते ही उनका अपूर्व स्वागत करते और उन्हें प्रणाम कर बडी धूमधाम से गाँव में ले जाते थे। खुशालचन्द बाबा को अपने घर ले जाते और कोमल आसन पर बिठाकर उत्तम सुस्वादु भोजन कराते और आनन्द तथा प्रसन्न चित्त से कुछ काल तक वार्त्तालाप किया करते थे। फिर बाबा सबको आनंदित कर और आशीर्वाद देकर शिरडी वापिस लौट आते थे।

एक ओर राहाता (दक्षिण में) तथा-दूसरी ओर नीमगाँव (उत्तर में) था। इन दोनों ग्रामों के मध्य में शिरडी स्थित है। बाबा अपने जीवन काल में कभी भी इन सीमाओं के पार नहीं गए। उन्होने कभी रेलगाड़ी नहीं देखी और न कभी उसमें प्रवास ही किया, परन्तु फिर भी उन्हें सब गाडियों के आवागमन का समय ठीक-ठीक ज्ञात रहता था। जो भक्तगण बाबा से लौटने की अनुमति माँगते और जो आदेशानुकूल चलते, वे कुशलपूर्वक घर पहुँच जाते थे।

परन्तु इसके विपरीत जो अवज्ञा करते, उन्हें दुर्भाग्य व दुर्घटनाओं का सामना करना पड़ता था। इस विषय से सम्बन्धित घटनाओं और अन्य विषयों का अगले अध्याय में विस्तारपूर्वक वर्णन किया जायेगा।

विशेष

इस अध्याय के नीचे दी हुई टिप्पणी बाबा के खुशालचन्द पर प्रेम के संबंध में है। किस प्रकार उन्होंने काकासाहेब दीक्षित को राहाता जाकर खुशालचन्द को लिवा लाने को कहा और उसी दोपहर को खुशालचन्द से स्वप्न में शिरडी आने को कहा, इसका उल्लेख यहाँ नहीं किया गया है, क्योंकि इसका वर्णन इस सच्चरित्रके ३० वें अध्याय में किया जाएगा।

।। श्री सद्‌गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु।।

।। अथ श्रीसाईसच्चरित।। ।। अध्याय ९ ।।

विदा होते समय बाबा की आज्ञा का पालन और अवज्ञा करने के परिणामों कुछ उदाहरण, भिक्षा वृत्ति और उसकी आवश्यकता, भक्तों (तर्खड कुटुम्ब) के अनुभव।

गत अध्याय के अन्त में केवल इतना ही संकेत किया गया था कि लौटते समय जिन्होंने बाबा के आदेशों का पालन किया, वे सकुशल घर लौटे और जिन्होंने अवज्ञा की, उन्हें दुर्घटनाओं का सामना करना पड़ा। इस अध्याय में यह कथन अन्य कई पुष्टिकारक घटनाओं और अन्य विषयों के साथ विस्तारपूर्वक समझाया जाएगा।

शिरडी यात्रा की विशेषता

शिरडी यात्रा की एक विशेषता यह थी कि बाबा की आज्ञा के बिना कोई भी शिरडी से प्रस्थान नहीं कर सकता था और यदि किसी ने किया भी , तो मानो उसने अनेक कष्टों को निमंत्रण दे दिया। परन्तु यदि किसी को शिरडी छोड़ने की आज्ञा हुई तो फिर वहाँ उसका ठहरना नहीं हो सकता था। जब भक्तगण लौटने के समय बाबा को प्रणाम करने जाते तो बाबा उन्हें कुछ आदेश दिया करते थे, जिनका पालन अति आवश्यक था। यदि इन आदेशों की अवज्ञा कर कोई लौट गया तो निश्चय ही उसे किसी न किसी दुर्घटना का सामना करना पड़ता था। ऐसे कुछ उदाहरण यहाँ दिए जाते हैं।

तात्या कोते पाटील

एक समय तात्या कोते पाटील ताँगे में बैठकर कोपरगाँव के बाजार को जा रहे थे। वे शीघ्रता से मस्जिद में आए। बाबा को नमन किया और कहा कि मैं कोपरगाँव के बाजार को जा रहा हूँ। बाबा ने कहा ,''शीघ्रता न करो थोड़ा ठहरो । बाजार जाने का विचार छोड़ दो और गाँव के बाहर न जाओ। '' उनकी उतावली को देखकर बाबा ने कहा, '' अच्छा, कम से कम शामा को तो साथ लेते जाओ। '' बाबा की आज्ञा की अवहेलना करके उन्होंने तुरन्त ताँगा आगे बढ़ाया । ताँगे के दो घोड़ों में से एक घोडा, जिसका मूल्य लगभग तीन सौ रुपया था, अति चंचल और द्रुतगामी था। रास्ते में सावली विहीर ग्राम पार करने के पश्चात् ही वह अधिक वेग से दौड़ने लगा। अकस्मात् ही उसकी कमर में मोच आ गई। वह वहीं गिर पड़ा। यद्यपि तात्या को अधिक चोट तो न आई, परन्तु उन्हें अपनी साई माँ के आदेशों की स्मृति अवश्य हो आई । एक अन्य अवसर पर कोल्हार ग्राम को जाते हुए भी उन्होंने बाबा के आदेशों की अवज्ञा की थी और ऊपर वर्णित घटना के समान ही दुर्घटना का उन्हें सामना करना पडा था।

एक यूरोपियन महाशय

एक समय बम्बई के एक यूरोपियन महाशय, नानासाहेब चाँदोकर से परिचय-पत्र प्राप्त कर किसी विशेष कार्य से शिरडी आए। उन्हें एक आलीशान तम्बू में ठहराया गया। वे तो बाबा के समक्ष नत होकर करकमलों का चुम्बन करना चाहते थे । इसी कारण उन्होंने तीन बार मस्जिद की सीढ़ियों पर चढ़ने का प्रयत्न किया; परन्तु बाबाने उन्हें अपने समीप आने से रोक दिया। उन्हें आँगन में ही ठहरने और वहीं से दर्शन करने की आज्ञा मिली । इस विचित्र स्वागत से अप्रसन्न होकर उन्होंने शीघ्र ही शिरडी से प्रस्थान करने का विचार किया और विदा लेने के हेतु वे वहाँ आए। बाबा ने उन्हें दूसरे दिन जाने और शीघ्रता न करने की राय दी। अन्य भक्तों ने भी उनसे बाबा के आदेश का पालन करने की प्रार्थना की। परन्तु वे सब की उपेक्षा कर ताँगे में बैठकर रवाना हो गए। कुछ दूर तक तो घोड़े ठीक-ठीक चलते रहे। परन्तु सावली विहीर नामक गाँव पार करने पर एक बाइसिकिल सामने से आई, जिसे देखकर घोड़े भयभीत हो गए और द्रुत गति से दौड़ने लगे। फलस्वरुप ताँगा उलट गया और महाशय जी नीचे लुढ़क गए और कुछ दूर तक ताँगे के साथ-साथ घिसटते चले गए। लोगों ने तुरन्त ही दौड़कर उन्हें बचा लिया, परन्तु चोट अधिक आने के कारण उन्हें कोपरगाँव के अस्पताल में शरण लेनी पड़ी । इस घटना भक्तों ने शिक्षा ग्रहण

की कि जो बाबा के आदेशों की अवहेलना करते हैं, उन्हें किसी न किसी प्रकार की दुर्घटना का शिकार होना ही पड़ता है और जो आज्ञा का पालन करते है, वे सकुशल और सुखपूर्वक घर पहुँच जाते है।

भिक्षावृत्ति की आवश्यङ्ग ता

अब हम भिक्षावृत्ति के प्रश्न पर विचार करेंगे । संभव है, कुछ लोगों के मन में सन्देह उत्पन्न हो कि जब बाबा इतने श्रेष्ठ पुरुष थे तो फिर उन्होंने आजीवन भिक्षावृत्ति पर ही क्यों निर्वाह किया?
इस प्रश्न को दो दृष्टिकोण सामने रख कर हल किया जा सकता है।

पहला दृष्टिकोण - भिक्षावृत्ति पर निर्वाह करने का कौन अधिकारी है?

शास्त्रानुसार वे व्यक्ति, जिन्होंने तीन मुख्य आसक्तियों - (१) कामिनी, (२) कांचन और (३) कीर्ति का त्याग कर, आसक्ति-मुक्त हो संन्यास ग्रहण कर लिया हो-वे ही भिक्षावृत्ति के उपयुक्त अधिकारी हैं, क्योंकि वे अपने गृह में भोजन तैयार कराने का प्रबन्ध नहीं कर सकते। अतः उन्हें भोजन कराने का भार गृहस्थों पर ही है। श्री साईबाबा न तो गृहस्थ थे और न वानप्रस्थी। वे तो बालब्रह्मचारी थे । उनकी यह दृढ़ भावना थी कि विश्व ही मेरा गृह है। वे तो स्वयं ही भगवान् वासुदेव, विश्वपालनकर्ता तथा परब्रह्म थे। अतः वे भिक्षा-उपार्जन के पूर्ण अधिकारी थे।

दूसरा दृष्टिकोण

पंचसूना - (पाँच पाप और उनका प्रायश्चित) :- सब को यह ज्ञात है कि भोजन सामग्री या रसोई बनाने के लिए गृहस्थाश्रमियों को पाँच प्रकार की क्रियाएँ करनी पड़ती हैं- (१) कंडणी (पीसना) (२) पेषणी (दलना) (३) उदकुंभी (बर्तन मलना) (४) मार्जनी (माँजना और धोना) (५) चूली (चूल्हा सुलगाना)।

इन क्रियाओं के परिणामस्वरुप अनेक कीटाणुओं और जीवों का नाश होता है और इस प्रकार गृहस्थाश्रमियों को पाप लगता है। इन पापों के प्रायश्चित स्वरुप शास्त्रों ने पाँच प्रकार के याग (यज्ञ) करने की आज्ञा दी है, अर्थात्

(१) ब्रह्मयज्ञ अर्थात् वेदाध्ययन- ब्रह्म को अर्पण करना या वेद का अध्ययन करना
(२) पितृयज्ञ-पूर्वजों को दान
(३) देवयज्ञ - देवताओं को बलि
(४) भूतयज्ञ - प्राणियों को दान
(५) मनुष्य (अतिथि) यज्ञ - मनुष्यों (अतिथियों) को दान।

यदि ये कर्म विधिपूर्वक शास्त्रानुसार किए जाए तो चित्त शुद्ध होकर ज्ञान और आत्मानुभूति की प्राप्ति सुलभ हो जाती है। बाबा द्वार-व्दार पर जाकर गृहस्थाश्रमियों को इस पवित्र कर्तव्य की स्मृति दिलाते रहते थे और वे लोग अत्यन्त भाग्यशाली थे, जिन्हें घर बैठे ही बाबा से शिक्षा ग्रहण करने का अवसर मिला जाता था।

भक्तों के अनुभव

अब हम अन्य मनोरंजक विषयों का वर्णन करते हैं। भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है - **" जो मुझे भक्तिपूर्वक केवल एक पत्र, फूल , फल या जल भी अर्पण करता है तो मैं उस शुद्ध अन्तःकरण वाले भक्त के द्वारा अर्पित की गई वस्तु को सहर्ष स्वीकार कर लेता हूँ। "** [१] यदि भक्त सचमुच में श्री साईबाबा का कुछ भेंट देना चाहता था और बादमें यदि उसे अर्पण करने की विस्मृति भी हो गई तो बाबा उसे या उसके मित्र द्वारा उस भेंट की स्मृति कराते और भेंट देने के लिए कहते तथा भेंट प्राप्त कर उसे आशीष देते थे। नीचे कुछ ऐसी ही घटनाओं का वर्णन किया जाता है।

तर्खड कुटुम्ब (पिता और पुत्र)

श्री. रामचंन्द्र आत्माराम उपनाम बाबासाहेब तर्खड़ पहले प्रार्थनासमाजी थे। तथापि वे बाबा के परम भक्त थे। उनकी स्त्री और पुत्र तो बाबा के एकनिष्ठ भक्त थे। एक बार उन्होंने ऐसा निश्चय किया कि पुत्र व उसकी माँ ग्रीष्मकालीन छुट्टियाँ शिरड़ी में ही व्यतीत करें। परन्तु पुत्र बाँद्रा छोड़ने को सहमत न हुआ। उसे भय था कि बाबा का पूजन घर में विधिपूर्वक न हो सकेगा, क्येंकि पिताजी प्रार्थना-समाजी हैं और संभव है कि वे श्रीसाईबाबा के पूजनादि का उचित ध्यान न रख सकें। परन्तु पिता के आश्वासन देने पर कि पूजन यथाविधि ही होता रहेगा, माँ और पुत्र ने एक शुक्रवार की रात्रि में शिरड़ी को प्रस्थान कर दिया।

दूसरे दिन शनिवार को श्रीमान् तर्खड़ ब्रह्म मुहूर्त्त में उठे और स्नानादि कर, पूजन प्रारम्भ करने के पूर्व, बाबा के सामने साष्टांग दण्डवत् करके बोले- '' हे बाबा! मैं ठीक वैसा ही आपका पूजन करता रहूँगा, जैसे कि मेरा पुत्र करता रहा है, परन्तु कृपा कर इसे शारीरिक परिश्रम तक ही सीमित न रखना ।'' ऐसा कहकर उन्होंने पूजन आरम्भ किया और मिश्री का नैवेद्य अर्पित किया, जो दोपहर के भोजन के समय प्रसाद के रुप में वितरित कर दिया गया।

१. पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः।। गीता ९।।२६।।

उस दिन की सन्ध्या तथा अगला दिन इतवार भी निर्विन्घ व्यतीत हो गया। सोमवार को उन्हें ऑफिस जाना था, परन्तु वह दिन भी निर्विन्घ निकल गया। श्री. तर्खड ने इस प्रकार अपने जीवन में कभी पूजा न की थी। उनके हृदय में अति सन्तोष हुआ कि पुत्र को दिए गए वचनानुसार पूजा यथाक्रम संतोषपूर्वक चल रही है। अगले दिन मंगलवार को सदैव की भाँति उन्होंने पूजा की और ऑफिस को चले गए। दोपहर को घर लौटने पर जब वे भोजन को बैठे तो थाली में प्रसाद न देखकर उन्होंने अपने रसोइए से इस सम्बन्ध में प्रश्न किया। उसने बतलाया कि आज विस्मृतिवश वे नैवद्य अर्पण करना भूल गए हैं। यह सुनकर वे तुरन्त अपने आसन से उठे और बाबा को दण्डवत् कर क्षमा याचना करने लगे तथा बाबा से उचित पथ-प्रदर्शन न करने तथा पूजन को केवल शारीरिक परिश्रम तक ही सीमित रखने के लिए उलाहना देने लगे। उन्होंने संपूर्ण घटना का विवरण अपने पुत्र द्वारा सूचित किया और उससे प्रार्थना की कि वह पत्र बाबा के श्री चरणों पर रखकर उनसे कहना कि वे इस अपराध के लिए क्षमाप्रार्थी हैं। यह घटना बाँद्रा में लगभग दोपहर को हुई थी और उसी समय शिरड़ी में जब दोपहर की आरती प्रारम्भ होने ही वाली थी कि बाबा ने श्रीमती तर्खड़ से कहा-''माँ, मैं कुछ भोजन पाने के विचार से तुम्हारे घर बाँद्रा गया था, द्वार में ताला लगा देखकर भी मैंने किसी प्रकार गृह में प्रवेश किया। परन्तु वहाँ देखा कि भाऊ (श्री. तर्खड़) मेरे लिए कुछ भी खाने को नहीं रख गए हैं । अतः आज मैं भूखा ही लौट आया हूँ। '' किसी को भी बाबा के वचनों का अभिप्राय समझ में नहीं आया; परन्तु उनका पुत्र जो समीप ही खड़ा था, सब कुछ समझ गया कि बाँद्रा में पूजन में कुछ तो भी त्रुटि हो गई है; इसलिए वह बाबा से लौटने की अनुमति माँगने लगा। परन्तु बाबा ने आज्ञा न दी और वहीं पूजन करने का आदेश दिया। उनके पुत्र ने शिरड़ी में जो कुछ हुआ, उसे पत्र में लिख कर पिता को भेजा और भविष्य में पूजन में सावधानी बर्तने के लिए विनंती की। दोनों पत्र डाक द्वारा दूसरे दिन दोनों पक्षों को मिले । क्या यह घटना आश्चर्यपूर्ण नहीं है?

श्रीमती तर्खड़

एक समय श्रीमती तर्खड ने तीन वस्तुएँ अर्थात्
(१) भरित (भुर्ता यानी मसाला मिश्रित भुना हुआ बैंगन और दही)
(२) काचर्या (बैंगन के गोल टुकडे घी में तले हुए) और
(३) पेड़ा (मिठाई) बाबा के लिए भेजी।
बाबा ने उन्हें किस प्रकार स्वीकार किया, इसे अब देखेंगे

बाँद्रा के श्री रघुवीर भास्कर पुरंदरे बाबा के परम भक्त थे। एक समय वे शिरड़ी को जा रहे थे । श्रीमती तर्खड़ ने श्रीमती पुरंदरे को दो बैंगन दिए और उनसे प्रार्थना की कि शिरड़ी पहुँचने पर वे एक बैंगन का भुर्ता और दूसरे का काचर्या बनाकर बाबा को भेंट कर दें। शिरड़ी पहुँचने पर श्रीमती पुरंदरे भुर्ता लेकर मस्जिद को गईं। बाबा

उसी समय भोजन को बैठे ही थे। बाबा को वह भुर्ता बड़ा स्वादिष्ट प्रतीत हुआ, इस कारण उन्होंने थोड़ा-थोड़ा सभी को वितरित किया। इसके पश्चात् ही बाबा ने काचर्या लाने को कहा। राधाकृष्णमाई के पास सन्देशा भेजा गया कि बाबा काचर्या माँग रहे हैं। वे बडे असमंजस में पड गई कि अब क्या करना चाहिए? बैंगन की तो अभी ऋतु ही नहीं है। अब समस्या उत्पन्न हुई कि बैंगन किस प्रकार उपलब्ध हो। जब इस बात का पता लगाया गया कि भुर्ता लाया कौन था? तब ज्ञात हुआ कि बैंगन श्रीमती पुरंदरे लाई थीं तथा उन्हें ही काचर्या बनाने का कार्य सौंपा गया था। अब प्रत्येक को बाबा की इस पूँछताँछ का अभिप्राय विदित हो गया और सब को बाबा की सर्वज्ञता पर महान् आश्चर्य हुआ।

दिसम्बर, सन् १९९५ में श्री गोविन्द बालाराम मानकर शिरड़ी जाकर वहाँ अपने पिता की अन्त्येष्टि - क्रिया करना चाहते थे। प्रस्थान करने से पूर्व वे श्रीमती तर्खड़ से मिलने आये। श्रीमती तर्खड़ बाबा के लिये कुछ भेंट शिरडी भेजना चाहती थीं। उन्होंने पूरा घर छान डाला, परन्तु केवल एक पेड़े के अतिरिक्त कुछ न मिला और वह पेड़ा भी अर्पित नैवेद्य का था। बालक गोविन्द ऐसी परिस्थिति देखकर रोने लगा। परन्तु फिर भी अति प्रेम के कारण वही पेड़ा बाबा के लिये भेज दिया। उन्हें पूर्ण विश्वास था कि बाबा उसे अवश्य स्वीकार कर लेंगे। शिरड़ी पहुँचने पर गोविन्द मानकर बाबा के दर्शनार्थ गए, परन्तु वहाँ पेडा ले जाना भूल गए । बाबा यह सब चुपचाप देखते रहे। परन्तु जब वह पुनः सन्ध्या समय बिना पेड़ा लिये हुए वहाँ पहुँचा तो फिर बाबा शान्त न रह सके और उन्होंने पूछा कि ''तुम मेरे लिए क्या लाए हो ?'' उत्तर मिला -'' कुछ नहीं।'' बाबा ने पुनः प्रश्न किया और उसने वही उपर्युक्त उत्तर फिर दुहरा दिया। अब बाबा ने स्पष्ट शब्दों में पूछा, '' क्या तुम्हें माँ (श्रीमती तर्खड़) ने चलते समय कुछ मिठाई नहीं दी थी?'' अब उसे स्मृति हो आई और बहुत ही लज्जित हुआ तथा बाबा से क्षमा-याचना करने लगा। वह दौड़कर शीघ्र ही वापस गया और पेडा लाकर बाबा के सम्मुख रख दिया। बाबा ने तुरन्त ही पेडा खा लिया। इस प्रकार श्रीमती तर्खड की भेंट बाबा ने स्वीकार की और '' भक्त मुझ पर विश्वास करता है, इसलिए मैं स्वीकार कर लेता हूँ।'' - यह भगवद्वचन सिद्ध हुआ।

बाबा का सन्तोषपूर्वक भैंजन

एक समय श्रीमती तर्खड़ शिरड़ी आई हुई थीं । दोपहर का भोजन प्रायः तैयार हो चुका था और थालियाँ परोसी ही जा रही थीं कि उसी समय वहाँ एक भूखा कुत्ता आया और भोंकने लगा। श्रीमती तर्खड तुरन्त उठीं और उन्होंने रोटी का एक टुकडा कुत्ते को डाल दिया। कुत्ता बड़ी रुचि के साथ उसे खा गया। सन्ध्या के समय जब वे में जाकर बैठीं तो बाबा ने उनसे कहा. '' माँ! आज तुमने बड़े प्रेम से मुझे खिलाया, मेरी भूखी आत्मा को बड़ी सान्त्वना मिली है। सदैव ऐसा ही करती रहो, तुम्हें कभी न कभी न कभी इसका उत्तम फल अवश्य प्राप्त होगा। इस मस्जिद में बैठकर मैं कभी असत्य नहीं बोलूँगा। सदैव मुझ पर ऐसा ही अनुग्रह करती रहो। पहले भूखों को भोजन कराओ, बाद में तुम भोजन किया करो। इसे अच्छी तरह ध्यान में रखो। '' बाबा के शब्दों का अर्थ उनकी समझ में न आया, इसलिए उन्होंने प्रश्न किया, '' भला! मैं किस प्रकार भोजन करा सकती हूँ? मैं तो स्वयं दूसरों पर निर्भर हूँ और उन्हें दाम देकर भोजन प्राप्त करती हूँ।'' बाबा कहने लगे, '' उस रोटी को ग्रहण कर मेरा हृदय तृप्त हो गया है और अभी तक मुझे डकारें आ रही हैं। **भोजन करने से पूर्व तुमने जो कुत्ता देखा था और जिसे तुमने रोटी का टुकडा दिया था, वह यथार्थ में मेरा ही स्वरुप था और इसी प्रकार अन्य प्राणी (बिल्लियाँ, सुअर, मक्खियाँ, गाय आदि) भी मेरे ही स्वरुप हैं। मैं ही उनके आकारों में डोल रहा हूँ। जो इन सब प्राणियों में मेरा दर्शन करता है। वह मुझे अत्यन्त प्रिय है। इसलिए द्वैत या भेदभाव भूल कर तुम मेरी सेवा किया करो। '' १**

इस अमृत तुल्य उपदेश को ग्रहण कर वे द्रवित हो गईं और उनकी आँखों से अश्रुधारा बहने लगी, गला रुँध गया और उनके हर्ष का पारावार न रहा।

शिक्षा

'' समस्त प्राणियों में ईश्वर-दर्शन करो'' - यही इस अध्याय की शिक्षा है। उपनिषद्, गीता और भागवत का यही उपदेश है कि ईशावास्यमिदं सर्वम् -'' सब प्राणियों में ही ईश्वर का वास हैं इसका प्रत्यक्ष अनुभव करो।''

अध्याय के अन्त में बतलाई गई घटना तथा अन्य अनेक घटनाएँ, जिनका लिखना अभी शेष है, स्वयं बाबा ने प्रत्यक्ष उदाहरण प्रस्तुत कर दिखाया कि किस प्रकार उपनिषदों की शिक्षा को आचरण में लाना चाहिए।

इसी प्रकार श्री साईबाबा शास्त्रग्रंथों की शिक्षा दिया करते थे।

।। श्री सद्‌गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु।।

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति।। - गीता अ. ६, श्लोक ३०

।। अथ श्रीसाईसच्चरित।। ।। अध्याय १० ।।

श्री साईबाबा का रहन सहन, शयन पटिया, शिरड़ी में निवास, उनके उपदेश, उनकी विनयशीलता, नानावली सु गम पथ।

प्रारम्भ

श्री साईबाबा का सदा ही प्रेमपूर्वक स्मरण करो, क्योंकि वे सदैव दूसरों के कल्याणार्थ तत्पर तथा आत्मलीन रहते थे। उनका स्मरण करना ही जीवन और मृत्यु की पहेली हल करना है। साधनाओं में यह अति श्रेष्ठ तथा सरल साधना है, क्योंकि इसमें द्रव्य व्यय नहीं होता। केवल मामूली परिश्रम से ही भविष्य नितान्त फलदायक होता है। जब तक इन्द्रियाँ बलिष्ठ हैं, क्षण-क्षण इस साधना को आचरण में लाना चाहिए। अन्य सब देवी-देवता तो भ्रमित करने वाले हैं, केवल गुरु ही ईश्वर हैं। हमें उनके ही पवित्र चरणकमलों में श्रद्धा रखनी चाहिए । वे तो हर इन्सान के भाग्यविधाता और प्रेममय प्रभु हैं। जो अनन्य भाव से उनकी सेवा करेंगे, वे भवसागर से निश्चय ही मुक्ति को प्राप्त होंगे। **न्याय अथवा मीमांसा या दर्शनशास्त्र पढ़ने की भी कोई आवश्यकता नहीं है। जिस प्रकार नदी या समुद्र पार करते समय नाविक पर विश्वास रखते हैं, उसी प्रकार का विश्वास हमें भवसागर से पार होने के लिए सद्‌गुरु पर करना चाहिए।** सद्‌गुरु तो केवल भक्तों के भक्ति-भाव की ओर ही देखकर उन्हें ज्ञान और परमानन्द की प्राप्ति करा देते हैं।

गत अध्याय में बाबा की भिक्षावृत्ति, भक्तों कें अनुभव तथा अन्य विषयों का वर्णन किया गया है। अब पाठकगण सुनें कि श्रीसाईबाबा किस प्रकार रहते, शयन करते और शिक्षा प्रदान करते थे।

बाबा का विचित्र बिस्तर

पहले हम यह देखेंगे कि बाबा किस प्रकार शयन करते थे। श्री नानासाहेब डेंगले एक चार हाथ लम्बा और एक हथेली चौड़ी लकड़ी का तख्ता श्रीसाईबाबा के शयन के हेतु लाये। तख्ता कहीं नीचे रख कर उस पर सोते, ऐसा न कर बाबा ने पुरानी चिन्दियों से मस्जिद की बल्ली से उसे झूले के समान बाँधकर उस पर शयन करना प्रारम्भ कर दिया। चिन्दियों के बिलकुल पतली और कमजोर होने के कारण लोगों को उसका झूला बनाना एक पहेली-सा बन गया। चिन्दियाँ को केवल तख्ते का भी भार वहन नहीं कर सकती थीं। फिर वे बाबा के शरीर का भार किस प्रकार सहन कर सकेंगी ? जिस प्रकार भी हो, यह तो राम ही जानें, परन्तु यह तो बाबा की एक लीला थी; जो फटी चिन्दियाँ तख्ते तथा बाबा का भार सँभाल रही थीं। तख्ते के चारों कोनों पर दीपक रात्रि भर जला करते थे। बाबा को तख्ते पर बैठे या शयन करते हुए देखना, देवताओं को भी दुर्लभ दृश्य था। सब आश्चर्यचकित थे कि बाबा किस प्रकार तख्ते पर चढ़ते होंगे और किस प्रकार नीचे उतरते होंगे। कौतूहलवश लोग इस रहस्योद्‌घाटन के हेतु दृष्टि लगाए रहते थे, परंतु यह समझने में कोई भी सफल न हो सका और इस रहस्य को जानने के लिए भीड़ उत्तरोत्तर ही बढ़ने लगी। इस कारण बाबा ने एक दिन तख्ता तोड़कर बाहर फेंक दिया। यद्यपि बाबा को अष्ट सिद्धयाँ प्राप्त थीं, परन्तु उन्होंने कभी भी उनका प्रयोग नहीं किया और न कभी उनकी ऐसी इच्छा ही हुई। वे तो स्वतः ही स्वाभाविक रुप से पूर्णता प्राप्त होने के कारण उनके पास आ गई थीं।

ब्रह्म का सगुण अवतार

बाह्मदृष्टिसे श्रीसाईबाबा साढ़े तीन हाथ लम्बे एक सामान्य पुरुष थे, फिर भी प्रत्येक के हृदय में वे विराजमान थे। अंदर से वे आसक्ति-रहित और स्थिर थे, परन्तु बाहर से जन-कल्याण के लिये सदैव चिन्तित रहते थे। अंदर से वे संपूर्ण रुप से निःस्वार्थी थे। भक्तों के निमित्त उनके हृदय में परम शांति विराजमान थी, परन्तु बाहर से वे अशान्त

प्रतीत होते थे। वे भीतर से ब्रह्मज्ञानी, परन्तु बाहर से संसार में उलझे हुए दिखलाई पड़ते थे। वे कभी प्रेमदृष्टि से देखते तो कभी पत्थर मारते, कभी गालियाँ देते और कभी हृदय से लगाते थे। वे गम्भीर, शान्त और सहनशील थे। वे सदा दृढ़ और आत्मलीन रहते थे और अपने भक्तों का सदैव उचित ध्यान रखते थे। वे सदा एक आसन पर ही विराजमान रहते थे। वे कभी यात्रा को नहीं निकले। उनका दंड एक छोटी सी लकड़ी थी, जिसे वे सदैव अपने पास सँभाल कर रखते थे। विचारशून्य होने के कारण वे शान्त थे। उन्होंने कांचन और कीर्ति की कभी चिन्ता नहीं की तथा सदा ही भिक्षावृत्ति द्वारा निर्वाह करते रहे। उनका जीवन ही इस प्रकार का था।'' अल्लाह मालिक'' सदैव उनके होठों पर रहता था। उनका भक्तों पर विशेष और अटूट प्रेम था। वे आत्म-ज्ञान की खान और परम दिव्य स्वरुप थे। श्रीसाईबाबा का दिव्य स्वरुप इस तरह का था। एक अपरिमित, अनन्त, सत्य और अपरिवर्तनशील सिद्धान्त, जिसके अन्तर्गत यह सारा विश्व है, श्रीसाईबाबा में आविर्भूत हुआ था। यह अमूल्य निधि केवल सत्त्व गुण-सम्पन्न और भाग्यशाली भक्तों को ही प्राप्त हुई। जिन्होंने श्रीसाईबाबा को केवल मनुष्य या सामान्य पुरुष समझा या समझते हैं, वे यथार्थ में अभागे थे या हैं।

श्रीसाईबाबा के माता-पिता तथा उनकी जन्मतिथि का ठीक-ठीक पता किसी को भी नहीं है तो भी उनके शिरडी में निवास के द्वारा इसका अनुमान लगाया जा सकता है। जब पहलेपहल बाबा शिरडी में आये थे तो उस समय उनकी आयु केवल १६ वर्ष की थी। वे शिरडी में ३ वर्ष तक रहने के बाद फिर कुछ समय के लिये अंतर्द्धान हो गये। कुछ काल के उपरान्त वे औरंगाबाद के समीप (निजाम स्टेट) में प्रकट हुए और चाँद पाटील की बारात के साथ पुनः शिरडी पधारे। उस समय उनकी आयु २० वर्ष की थी। उन्होंने लगातार ६० वर्षों तक शिरडी में निवास किया और सन् १९१८ में महासमाधि ग्रहण की। इन तथ्यों के आधार पर हम कह सकते हैं कि उनकी जन्म-तिथि सन् १८३८ के लगभग थी।

बाबा का ध्येय और उपदेश

सत्रहवीं शताब्दी (१६०८- १६८१) में सन्त रामदास प्रकट हुए और उन्होंने यवनों से गायों और ब्राह्मणों की रक्षा करने का कार्य पर्याप्त सीमा तक सफलतापूर्वक किया। परन्तु दो शताब्दियों के व्यतीत हो जाने के बाद हिन्दू और मुसलमानों में वैमनस्य बढ़ गया और इसे दूर करने के लिये ही श्रीसाईबाबा प्रगट हुए। उनका सभी के लिये यही उपदेश था कि '' राम (जो हिन्दुओं का भगवान् है) और रहीम (जो मुसलमानों का खुदा है) एक ही हैं और उनमें किंचित् मात्र भी भेद नहीं है। फिर तुम उनके अनुयायी क्यों पृथक्-पृथक् रहकर परस्पर झगड़ते हो? अज्ञानी बालको ! दोनों जातियाँ एकता साध कर और एक साथ मिलजुलकर रहो। शांत चित्त से रहो और इस प्रकार राष्ट्रीय एकता का ध्येय प्राप्त करो। कलह और विवाद व्यर्थ है। इसलिये न झगड़ो और न परस्पर प्राणघातक ही बनो। सदैव अपने हित तथा कल्याण का विचार करो। श्रीहरि तुम्हारी रक्षा अवश्य करेंगे। योग, वैराग्य, तप, ज्ञान आदि ईश्वर के समीप पहुँचने के मार्ग हैं। यदि तुम किसी तरह सफल साधक नहीं बन सकते तो तुम्हारा जन्म व्यर्थ है। तुम्हारी कोई कितनी ही निन्दा क्यों न करे, तुम उसका प्रतिकार न करो। यदि कोई शुभ कर्म करने की इच्छा है तो सदैव दूसरों की भलाई करो।'' **१**

१. अष्टदश पुराणेषुव्यासस्य वचन द्वयम्।
परोपकारः पुण्याय पापाय पर पीड़नम्।।
''परहित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा समं नहिं अधमाई।'' - तुलसी

संक्षेप में यही श्रीसाईबाबा का उपदेश है कि उपर्युक्त कथनानुसार आचरण करने से भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों ही क्षेत्रों में तुम्हारी प्रगति होगी।

सच्चिदानंद सद्गुरु श्रीसाईनाथ महाराज

गुरु तो अनेक हैं। कुछ गुरु ऐसे हैं, जो द्वार-द्वार हाथ में वीणा और करताल लिए अपनी धार्मिकता का प्रदर्शन करते फिरते हैं। वे शिष्यों के कानों मे मंत्र फूँकते और उनकी सम्पत्ति का शोषण करते फिरते हैं। वे ईश्वर भक्ति तथा धार्मिकता का केवल ढोंग ही रचते हैं। वे वस्तुतः अपवित्र और अधार्मिक होते हैं। श्रीसाईबाबा ने धार्मिक निष्ठा प्रदर्शित करने का विचार भी कभी मन में नहीं किया। दैहिक बुद्धि उन्हें किंचित्मात्र भी छू न गई थी। परन्तु उनमें भक्तों के लिए असीम प्रेम था। गुरु दो प्रकार के होते हैं:- (१) नियत और (२) अनियत। अनियत गुरु के

आदेशों से अपने में उत्तम गुणों का विकास होता तथा चित्त की शुद्धि होकर विवेक की वृद्धि होती है। वे भक्ति-पथ पर लगा देते हैं। परन्तु नियत गुरु की संगति मात्र से द्वैत बुद्धि का ह्रास शीघ्र हो जाता है। गुरु और भी अनेक प्रकार के होते हैं, जो भिन्न-भिन्न प्रकार की सांसारिक शिक्षाएं प्रदान करते हैं। यथार्थ में जो हमें आत्मस्थित बनाकर इस भवसागर से पार उतार दे, वही सद्गुरु है। श्रीसाईबाबा उसी कोटि के सद्गुरु थे। उनकी महानता अवर्णनीय है। जो भक्त बाबा के दर्शनार्थ आते, उनके प्रश्न करने के पूर्व ही बाबा उनके समस्त जीवन की त्रिकालिक घटनाओं का पूरा-पूरा विवरण कह देते थे। वे समस्त भूतों में ईश्वर-दर्शन किया करते थे। मित्र और शत्रु उन्हें दोनों एक समान थे। वे निःस्वार्थी तथा दृढ़ थे। भाग्य और दुर्भाग्य का उन पर कोई प्रभाव न था। वे कभी संशयग्रस्त नहीं हुए। देहधारी होकर भी उन्हें देह की किंचित्मात्र आसक्ति न थी। देह तो उनके लिए केवल एक आवरण मात्र था। यथार्थ में तो वे नित्य मुक्त थे।

वे शिरड़ीवासी धन्य हैं, जिन्होंने श्रीसाईबाबा की ईश्वर-रुप में उपासना की। सोते-जागते, खाते-पिते, वाड़े या खेत तथा घर में अन्य कार्य करते हुए भी वे लोग सदैव उनका स्मरण तथा गुणगान करते थे। साईबाबा के अतरिक्त दूसरा कोई ईश्वर वे मानते ही नथे। शिरड़ी की नारियों के प्रेम की माधुरी का तो कहना ही क्या है! वे बिलकुल भोलीभाली थीं। उनका पवित्र प्रेम उन्हें ग्रामीण भाषा में भजन रचने की सदैव प्रेरणा देता रहता था। यद्यपि वे शिक्षित न थीं तो भी उनके सरल भजनों में वास्तविक काव्य की झलक थी। यह कोई विद्वत्ता न थी, वरन् उनका सच्चा प्रेम ही इस प्रकार की कविता का प्रेरक था। कविता तो सच्चे प्रेम का प्रगट स्वरुप ही है, जिसमें चतुर श्रोता-गण ही यथार्थ दर्शन या रसिकता का अनुभव करते हैं। सर्वसाधारण को इन लौकिक गीतों की बड़ी आवश्यकता है। शायद भविष्य में बाबा की कृपा से कोई भाग्यशाली भक्त गीतसंग्रह-कार्य अपने हाथ में लेकर इन गीतों को साईलीला पत्रिका में या पुस्तकरुप में प्रकाशित करवा दे।

बाबा की विनयशीलता

ऐसा कहते हैं कि भगवान् में छः प्रकार के विशेष गुण होते हैं- यथा (१) कीर्त्ति (२) श्री (३) वैराग्य (४) ज्ञान (५) ऐश्वर्य और (६) उदारता। श्रीसाईबाबा में भी ये सब गुण विद्यमान थे। उन्होंने भक्तों की इच्छा-पूर्ति के निमित्त ही सगुण अवतार धारण किया था। उनकी कृपा (दया) बड़ी ही विचित्र थी। वे भक्तों को स्वयं अपने पास आकर्षित करते थे। अन्यथा उन्हें कोई कैसे जान पाता? भक्तों के हेतु वे अपने श्रीमुख से ऐसे वचन कहते, जिनका वर्णन करने का सरस्वती भी साहस न कर सकतीं। उनमें से यहाँ पर एक रोचक नमूना दिया जाता है। बाबा अति विनम्रता से इस प्रकार बोलते ''दासानुदास, मैं तुम्हारा ऋणी हूँ, तुम्हारे दर्शन मात्र से मुझे सान्त्वना मिली; यह तुम्हारा मेरे ऊपर बड़ा उपकार है कि जो मुझे तुम्हारे चरणों का दर्शन प्राप्त हुआ। तुम्हारे दर्शन कर मैं अपने को धन्य समझता हूँ।'' कैसी विनम्रता है? यदि कोई यह सोचे कि इन वाक्यों को प्रकाशित करने से श्रीसाईबाबा की महानता को आँच पहुँची है तो मैं इसके लिए क्षमाप्रार्थी हूँ और इसके प्रायश्चित स्वरुप मैं साई नाम का कीर्त्तन तथा जप किया करता हूँ।

यद्यपि बाह्य दृष्टि से बाबा विषय-पदार्थोका उपभोग करते हुए प्रतीत होते थे, परन्तु उन्हें किंचित्मात्र भी उनकी गन्ध न थी और न ही उनके उपभोग का ज्ञान था। वे खाते अवश्य थे, परन्तु उनकी जिह्वा को स्वाद न था। वे नेत्रों से देखते थे, परन्तु उस दृश्य में उनकी कोई रुचि न थी। काम के सम्बन्ध में वे हनुमान सदृश अखंड बृह्मचारी थे। उन्हें किसी पदार्थ में आसक्ति न थी। वे शुद्ध चैतन्य स्वरुप थे, जहाँ समस्त इच्छाएँ, अहंकार और अन्य चेष्टाएँ विश्राम पाती थीं। संक्षेप में वे निःस्वार्थ, मुक्ती और, पूर्ण ब्रह्म थे। इस कथन को समझने के हेतु एक रोचक कथा का उदाहरण यहाँ दिया जाता है।

नानावल्ली

शिरडी में नानावल्ली नाम का एक विचित्र और अनोखा व्यक्ति था। वह बाबा के सब कार्यों की देखभाल किया करता था। एक समय जब बाबा गादी पर विराजमान थे, वह उनके पस पहुँचा। वह स्वयं ही गादी पर बैठना चाहता था। इसलिए उसने बाबा को वहाँ से हटने को कहा। बाबा ने तुरन्त गादी छोड़ दी और तब नानावल्ली वहाँ विराजमान हो गया। थोड़े ही समय वहाँ बैठकर वह उठा और बाबा को अपना स्थान ग्रहण करने को कहा। बाबा पुनः आसन पर बैठ गए। यह देखकर नानावल्ली उनके चरणों पर गिर पड़ा और भाग गया। इस प्रकार अनायास ही आज्ञा दिए जाने और वहाँ से उठाए जाने के कारण बाबा में किंचित्मात्र भी अप्रसन्नता की झलक न थी।

सुगम पथ सन्तों की कथाओं का श्रवण करना और उनका समागम

यद्यपि बाह्य दृष्टि से श्रीसाईबाबा का आचरण सामान्य पुरुषों के सदृश ही था, परन्तु उनके कार्यो से उनकी असाधारण बुद्धिमत्ता और चतुराई स्पष्ट ही प्रतीत होती थी। उनके समस्त कर्म भक्तों की भलाई के निमित्त ही होते थे। उन्होंने कभी भी अपने भक्तों को किसी आसन या प्राणायाम के नियमों अथवा किसी उपासना का आदेश कभी नहीं दिया और न उनके कानों में कोई मन्त्र ही फूँका। उनका तो सभी के लिए यही कहना था कि **चातुर्य त्याग कर सदैव 'साई साई' यही स्मरण करो। इस प्रकार आचरण करने से समस्त बन्धन छूट जाएंगे और तुम्हें मुक्ति प्राप्त हो जोएगी।** पंचाग्नि, तप, त्याग, स्मरण, अष्टांग योग आदि का साध्य होना केवल ब्राह्मणों को ही सम्भव है।

मन का कार्य विचार करना है। बिना विचार किए वह एक क्षण भी नहीं रह सकता। यदि तुम उसे किसी विषय में लगा दोगे तो वह उसी का चिन्तन करने लगेगा और यदि उसे गुरु को अर्पण कर दोगे तो वह गुरु के सम्बन्ध में ही चिन्तन करता रहेगा। आप लोग बहुत ध्यानपूर्वक साई की महानता और श्रेष्ठता श्रवण कर ही चुके हैं। यह स्वाभाविक स्मरण और पूजन ही साई का कीर्तन है। सन्तों की कथा का स्मरण उतना कठिन नहीं, जितना कि अन्य साधनाओं का, जिनका वर्णन ऊपर किया जा चुका है। ये कथाएँ सांसारिक भय को निर्मूल कर आध्यात्मिक पथ पर आरुढ़ करती हैं। इसलिए इन कथाओं का हमेशा श्रवण और मनन करो तथा आचरण में भी लाओ। सांसारिक कार्यो में लगे रहने पर भी अपना चित्त साई और उनकी कथाओं में लगाए रहो। तब तो यह निश्चित है कि वे कृपा अवश्य करेंगे। यह मार्ग अति सरल होने पर भी क्या कारण है कि सब कोई इसका अवलम्बन नहीं करते? कारण केवल यह है कि ईश-कृपा के अभाववश लोगों में सन्त कथाएँ श्रवण करने की रुचि उत्पन्न नहीं होती। ईश्वर की कृपा से ही प्रत्येक कार्य सुचारु एवं सुंदर ढंग से चलता है। सन्तों की कथा का श्रवण ही सन्तसमागम सदृश है। सन्त-सान्निध्य का महत्व अति महान् है। उससे दैहिक बुद्धि, अहंकार और जन्म मृत्यु के चक्र से मुक्ति हो जाती है। हृदय की समस्त ग्रंथियाँ खुल जाती हैं और ईश्वर से मिलन हो जाता है, जोकि चैतन्यघन स्वरुप है। विषयों से निश्चय ही विरक्ति बढ़ती है तथा दुःखों और सुखों में स्थिर रहने की शक्ति प्राप्त हो जाती है और आध्यात्मिक उन्नति सुलभ हो जाती है। यदि तुम कोई साधन जैसे- नामस्मरण, पूजन या भक्ति इत्यादि नहीं करते, परन्तु अनन्य भाव से केवल सन्तों के ही शरणागत हो जाओ तो वे तुम्हें आसानी से भवसागर के उस पार उतार देंगे। इसी कार्य के निमित्त ही सन्त विश्व में प्रगट होते हैं। पवित्र नदियाँ - गंगा, यमुना, गोदावरी, कृष्णा, कावेरी आदि जो संसार के समस्त पापों को धो देती हैं, वे भी सदैव इच्छा करती हैं कि कोई महात्मा अपने चरण-स्पर्श से हमें पावन करे। ऐसा सन्तों का प्रभाव है। गत जन्मों के शुभ कर्मो के फलस्वरुप ही श्रीसाई चरणों की प्राप्ति संभव है।

मैं श्रीसाई के मोह-विनाशक चरणों का ध्यान कर यह अध्याय समाप्त करता हूँ। उनका स्वरुप कितना सुन्दर और मनोहर है ! मस्जिद के किनारे पर खड़े हुए वे सब भक्तों को, उनके कल्याणार्थ उदी वितरण किया करते हैं, जो इस विश्व को मिथ्या मानकर सदा आत्मानंद में निमग्न रहते थे, ऐसे सच्चिदानंद श्रीसाईमहाराज के चरणकमलों में मेरा बार-बार नमस्कार है।

।। श्री सद्‌गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु।।

।। अथ श्रीसाईसच्चरित।। ।। अध्याय ११ ।।

सगुण ब्रह्म श्रीसाईबाबा, डॉक्टर पंडित व्दारा पूजन, हाजी सिद्दीक फालके, तत्वों पर नियंत्रण

इस अध्याय में अब हम श्रीसाईबाबा के सगुण ब्रह्म स्वरुप, उनका पूजन तथा तत्त्वनियंत्रण का वर्णन करेंगे।

सगुण ब्रह्म श्रीसाईबाबा

ब्रह्म के दो स्वरुप हैं - निर्गुण और सगुण। निर्गुण निराकार है और सगुण साकार है। यद्यपि वे एक ही ब्रह्म के दो रुप हैं, फिर भी किसी को निर्गुण और किसी को सगुण उपासना में दिलचस्पी होती है, जैसा कि गीताके अध्याय १२ में वर्णन किया गया है। सगुण उपासना सरल और श्रेष्ठ है। मनुष्य स्वयं आकार (शरीर, इन्द्रिय आदि) में है, इसीलिए उसे ईश्वर की साकार उपासना स्वभावतः ही सरल है। जब तक कुछ काल सगुण ब्रह्म की उपासना न की जाए, तब तक प्रेम और भक्ति में वृद्धि ही नहीं होती। सगुणोपासना में जैसे-जैसे हमारी प्रगति होती जाती है, हम निर्गुण ब्रह्म की ओर अग्रसर होते जाते हैं। इसलिए सगुण उपासना से ही श्रीगणेश करना अति उत्तम है। मूर्ति, वेदी, अग्नि, प्रकाश, सूर्य, जल और ब्राह्मण आदि सप्त उपासना की वस्तुएँ होते हुए भी, सद्‌गुरु ही इन सभी में श्रेष्ठ है।

श्रीसाई का स्वरुप आँखों के सम्मुख लाओ, जो वैराग्य की प्रत्यक्ष मूर्ति और अनन्य शरणागत भक्तों के आश्रयदाता हैं। उनके शब्दों में विश्वास लाना ही आसन और उनके पूजन का संकल्प करना ही समस्त इच्छाओं का त्याग है।

कोई-कोई श्रीसाईबाबा की गणना भगवत्‌भक्त अथवा एक महाभागवत(महान् भक्त) में करते थे या करते हैं। परन्तु हम लोगों के लिए तो वे ईश्वरावतार हैं। वे अत्यन्त क्षमाशील, शान्त, सरल और सन्तुष्ट थे, जिसको कोई उपमा ही नहीं दी जा सकती। यद्यपि वे शरीरधारी थे, पर यथार्थ में निर्गुण, निराकार, अनन्त और नित्यमुक्त थे। गंगा नदी समुद्र की ओर जाती हुई मार्ग में ग्रीष्म से व्यथित अनेकों प्राणियों को शीतलता पहुँचा कर आनन्दित करती, फसलों और वृक्षों को जीवन-दान देती और जिस प्रकार प्राणियों की क्षुधा शान्त करती है, उसी प्रकार श्रीसाई सन्त-जीवन व्यतीत करते हुए भी दूसरों को सान्त्वना और सुख पहुँचाते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है '' संत ही मेरी आत्मा हैं। वे मेरी जीवित प्रतिमा और मेरे ही विशुद्ध रुप है। मैं स्वयं वही हूँ।'' यह अवर्णनीय शक्तियाँ या ईश्वर की शक्ति, जो कि सत्, चित् और आनन्द है, शिरड़ी में साई रुप में अवतीर्ण हुई थीं। श्रुति (तैतिरीय उपनिषद्) में ब्रह्म को आनन्द कहा गया है। अभी तक यह विषय केवल पुस्तकों में पढ़ते और सुनते थे; परन्तु भक्तगण ने शिरड़ी में इस प्रकार का प्रत्यक्ष आनन्द पा लिया है। बाबा सब के आश्रयदाता थे, उन्हें किसी की सहायता की आवश्यकता न थी। उनके बैठने के लिए भक्तगण एक मुलायम आसन और एक बड़ा तकिया लगा देते थे। बाबा भक्तों के भावों का आदर करते और उनकी इच्छानुसार पूजनादि करने देने में किसी प्रकार की आपत्ति न करते थे। कोई उनके सामने चँवर डुलाते, कोई वाद्य बजाते और कोई पादप्रक्षालन करते थे। कोई इत्र और चन्दन लगाते; कोई सुपारी, पान और अन्य वस्तुएँ भेंट करते और कोई नैवेद्य ही अर्पित करते थे। यद्यपि ऐसा जान पड़ता था कि उनका निवासस्थान शिरड़ी में है, परन्तु वे तो सर्वव्यापक थे। इसका भक्तों ने नित्य प्रति अनुभव किया। ऐसे सर्वव्यापक गुरुदेव के चरणों में मेरा बार-बार नमस्कार है।

डॉक्टर पंडित की भक्ति

एक बार श्री तात्या नूलकर के मित्र डॉक्टर पंडित बाबा के दर्शनार्थ शिरड़ी पधारे। बाबा को प्रणाम कर वे मस्जिद में कुछ देर तक बैठे। बाबा ने उन्हें श्री दादा भट केलकर के पास भेजा, जहाँ पर उनका अच्छा स्वागत हुआ। फिर दादा भट और डॉ. पंडित एक साथ पूजन के लिए मस्जिद पहुँचे। दादा भट ने बाबा का पूजन किया। बाबा का पूजन तो प्रायः सभी किया करते थे, परन्तु अभी तक उनके शुभ मस्तक पर चन्दन लगाने का किसी ने भी

साहस नहीं किया था। केवल एक म्हालसापति ही उनके गले में चन्दन लगाया करते थे। डॉ. पंडित ने पूजन की थाली में से चन्दन लेकर बाबा के मस्तक पर त्रिपुण्डाकार लगाया। लोगों ने महान् आश्चर्य से देखा कि बाबा ने एक शब्द भी नहीं कहा। सन्ध्या समय दादा भट ने बाबा से पूछा, '' क्या कारण है कि आप दूसरों को तो मस्तक पर चन्दन नहीं लगाने देते, परन्तु डॉ. पंडित को आपने कुछ भी नहीं कहा?'' बाबा कहने लगे,'' डॉ. पंडित ने मुझे अपने गुरु श्री रघुनाथ महाराज धोपेश्वरकर, जो कि काका पुराणिक के नाम से प्रसिद्ध हैं, के ही समान समझा और अपने गुरु को वे जिस प्रकार चन्दन लगाते थे, उसी भावना से उन्होंने मुझे चन्दन लगाया। तब मैं कैसे रोक सकता था?'' पूछने पर डॉ. पंडित ने दादा भट से कहा कि मैंने बाबा को अपने गुरु काका पुराणिक के समान ही जानकर उन्हें त्रिपुण्डाकार चन्दन लगाया है, जिस प्रकार मैं अपने गुरु को सदैव लगाया करता था।

यद्यपि बाबा भक्तों को उनकी इच्छानुसार ही पूजन करने देते थे, परन्तु कभी-कभी तो उनका व्यवहार विचित्र ही हो जाया करता था। जब कभी वे पूजंन की थाली फेंक कर रुद्रावतार धारण कर लेते, तब उनके समीप जाने का साहस ही किसी को न हो सकता था। कभी वे भक्तों को झिड़कते और कभी मोम से भी नरम होकर शान्ति तथा क्षमा की मूर्ति-से प्रतीत होते थे। कभी-कभी वे क्रोधावस्था में कम्पायमान हो जाते और उनके लाल नेत्र चारों ओर घूमने लगते थे, तथापि उनके अन्तःकरण में प्रेम और मातृ-स्नेह का स्त्रोत बहा ही करता था। भक्तों को बुलाकर वे कहा करते थे कि उन्हें तो कुछ ज्ञात ही नहीं है कि वे कब उनपर क्रोधित हुए। यदि यह सम्भव हो कि माताएँ अपने बालकों को ठुकरा दें और समुद्र नदियों को लौटा दे तो ही वे भक्तों के कल्याण की भी उपेक्षा कर सकते हैं। वे तो भक्तों के समीप ही रहते हैं और जब भक्त उन्हें पुकारते हैं तो वे तुरन्त ही उपस्थित हो जाते हैं। वे तो सदा भक्तों के प्रेम के भूखे हैं।

हाजी सिद्दीक फालके

यह कोई नहीं कह सकता था कि कब श्री साईबाबा अपने भक्त को अपना कृपापात्र बना लेंगे। यह उनकी सदिच्छा पर निर्भर था। हाजी सिद्दीक फालके की कथा इसी का उदाहरण है। कल्याणनिवासी एक यवन, जिनका नाम सिद्दीक फालके था, मक्का शरीफ की हज करने के बाद शिरड़ी आए। वे चावड़ी में उत्तर की ओर रहने लगे। वे मस्जिद के सामने खुले आँगन में बैठा करते थे। बाबा ने उन्हें ९ माह तक मस्जिद में प्रविष्ट होने की आज्ञा न दी और न ही मस्जिद की सीढ़ी चढ़ने दी। फालके बहुत निराश हुए और कुछ निर्णय न कर सके कि कौनसा उपाय काम में लाएँ। लोगों ने उन्हें सलाह दी कि आशा न त्यागो। शामा श्रीसाईबाबा के अंतरंग भक्त हैं। तुम उनके ही द्वारा बाबा के पास पहुँचने का प्रयन्त करो। जिस प्रकार भगवान शंकर के पास पहुँचने के लिए नन्दी के पास जाना आवश्यक होता है, उसी प्रकार बाबा के पास भी शामा के द्वारा ही पहुँचना चाहिए। फालके को यह विचार उचित प्रतीत हुआ और उन्होंने शामा से सहायता की प्रार्थना की। शामा ने भी आश्वासन दे दिया और अवसर पाकर वे बाबा से इस प्रकार बोले कि, '' बाबा, आप उस बूढ़े हाजी को मस्जिद में किस कारण नहीं आने देते? अनेक भक्त स्वेच्छापूर्वक आपके दर्शन को आया-जाया करते हैं। कम से कम एक बार तो उसे आशीष दे दो। '' बाबा बोले, ''शामा, तुम अभी नादान हो। यदि फकीर (अल्लाह) नहीं आने देता है तो मैं क्या करुँ? उनकी कृपा के बिना कोई भी मस्जिद की सीढ़ियाँ नहीं चढ़ सकता। अच्छा, तुम उससे पूछ आओ कि क्या वह बारवी कुएँ की निचली पगडंडी पर आने को सहमत है?'' शामा स्वीकारात्मक उत्तर लेकर पहुँचे। फिर बाबा ने पुनः शामा से कहा कि उससे फिर पूछो कि '' क्या वह मुझे चार किश्तों में चालीस हजार रुपये देने को तैयार है?'' फिर शामा उत्तर लेकर लौटे कि '' आप कहें तो मैं चालीस लाख रुपये देने को तैयार हूँ।'' '' मैं मस्जिद में एक बकरा हलाल करने वाला हूँ, उससे पूछा कि उसे क्या रुचिकर होगा- बकरे का मांस, नाध या अंडकोष?'' शामा यह उत्तर लेकर लौटे कि '' यदि बाबा के भोजन-पात्र में से एक ग्रास भी मिल जाय तो हाजी अपने को सौभाग्यशाली समझेगा। '' यह उत्तर पाकर बाबा उत्तेजित हो गए और उन्होंने अपने हाथ से मिट्टी का बर्तन (पानी की गागर) उठाकर फेंक दी और अपनी कफनी उठाए हुए सीधे हाजी के पास पहुँचे। वे उनसे कहने लगे कि ''व्यर्थ ही नमाज क्यों पढ़ते हो? अपनी श्रेष्ठता का प्रदर्शन क्यों करते हो? यह वृद्ध हाजियों के समान वेशभूषा तुमने क्यों धारण की है? क्या तुम कुरान शरीफ का इसी प्रकार पठन करते हो? तुम्हें अपने मक्का हज का अभिमान हो गया है, परन्तु तुम मुझसे अनभिज्ञ हो।'' इस प्रकार डाँट सुनकर हाजी घबड़ा गया। बाबा मस्जिद को लौट आए और कुछ आमों की टोकरियाँ खरीद कर हाजी के पास भेज दीं। वे स्वयं भी हाजी के पास गए और अपने पास से ५५ रुपये निकाल कर हाजी को दिए। इसके बाद से ही बाबा हाजी से प्रेम करने लगे तथा अपने साथ भोजन करने को बुलाने लगे। अब हाजी भी अपनी

इच्छानुसार मस्जिद में आने-जाने लगे। कभी-कभी बाबा उन्हें कुछ रुपयें भी भेंट में दे दिया करते थे। इस प्रकार हाजी बाबा के दरबार में सम्मिलित हो गए।

बाबा का तत्त्वों पर नियंत्रण

बाबा के तत्त्व-नियंत्रण की दो घटनाओं के उल्लेख के साथ ही यह अध्याय समाप्त हो जाएगा।

(१) एक बार सन्ध्या समय शिरड़ी में भयानक झंझावात आया। आकाश में घने और काले बादल छाए हुए थे। पवन झकोर से बह रहा था। बादल गरजते और बिजली चमक रही थी। मूसलधार वर्षा प्रारंभ हो गई। जहाँ देखो, वहाँ जल ही जल दृष्टिगोचर होने लगा। सब पशु, पक्षी और शिरड़ीवासी अधिक भयभीत होकर मस्जिद में एकत्रित हुए। शिरड़ी में देवियाँ तो अनकों हैं, परन्तु उस दिन सहायतार्थ कोई न आई। इसलिए सभी ने अपने भगवान साई से, जो भक्ति के ही भूखे थे, संकट-निवारण करने की प्रार्थना की। बाबा को भी दया आ गई और वे बाहर निकल आए। मस्जिद के समीप खड़े होकर उन्होंने बादलों की ओर दृष्टि कर गरजते हुए शब्दों में कहा कि ''बस, शांत हो जाओ।'' कुछ समय के बाद ही वर्षा का जोर कम हो गया और पवन मन्द पड़ गया तथा आँधी भी शान्त हो गई। आकाश में चन्द्र देव उदित हो गए'। तब सब लोग अति प्रसन्न होकर अपने-अपने घर लौट आए।

(२) एक अन्य अवसर पर मध्याह्न के समय धूनी की अग्नि इतनी प्रचण्ड होकर जलने लगी कि उसकी लपटें ऊपर छत तक पहुँचने लगीं। मस्जिद में बैठे हुए लोगों की समझ में न आता था कि जल डाल कर अग्नि शांत कर दें अथवा कोई अन्य उपाय काम में लावें। बाबा से पूछने का साहस भी कोई नहीं कर पा रहा था।

परन्तु बाबा शीघ्र परिस्थिति को जान गए। उन्होंने अपना सटका उठाकर सामने के खम्भे पर बलपूर्वक प्रहार किया और बोले'' नीचे उतरो और शान्त हो जाओ।'' सटके की प्रत्येक ठोकर पर लपटें कम होने लगीं और कुछ मिनटों में ही धूनी शान्त और यथापूर्व हो गई। श्रीसाई ईश्वर के अवतार हैं। जो उनके सामने नत होकर उनके शरणागत होगा, उस पर वे अवश्य कृपा करेंगे। जो भक्त इस अध्याय की कथाएँ प्रतिदिन श्रद्धा और भक्तिपूर्वक पठन करेगा, उसका दुःखों से शीघ्र ही छुटकारा हो जाएगा। केवल इतना ही नहीं, वरन् उसे सदैव श्रीसाई चरणों का स्मरण बना रहेगा और उसे अल्प काल में ही ईश्वर-दर्शन की प्राप्ति होकर, उसकी सभी इच्छाए पूर्ण हो जाएंगी और इस प्रकार वह निष्काम बन जाएगा।

।। श्री सद्‌गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु।।

।। अथ श्रीसाईसच्चरित।। ।। अध्याय १२ ।।

काका महाजनी (२) धुमाल वकील (३) श्रीमती निमोणकर (४) मुले शास्त्री (५) एक डॉक्टर के द्वारा बाबा की लीलाओं का अनुभव।

इस अध्याय में-बाबा किस प्रकार भक्तों से भेंट करते और कैसा बर्ताव करते थे, इसका वर्णन किया गया है।

सन्तों का कार्य

हम देख चुके हैं कि ईश्वरीय अवतार का ध्येय साधुजनों का परित्राण और दुष्टों का संहार करना है। परन्तु संतों का कार्य तो सर्वथा भिन्न ही है। सन्तों के लिए साधु और दुष्ट प्रायः एक समान ही हैं। यथार्थ में उन्हें दुष्कर्म करने वालों की प्रथम चिन्ता होती है और वे उन्हें उचित पथ पर लगा देते हैं। वे भवसागर के कष्टों को सोखने के लिए अगस्त्य के सदृश हैं और अज्ञान तथा अंधकार का नाश करने के लिए सूर्य के समान हैं। सन्तों के हृदय में भगवान् वासुदेव निवास करते हैं। वे उनसे पृथक् नहीं हैं। श्रीसाई भी उसी कोटि में हैं, जो कि भक्तों के कल्याण के निमित्त ही अवतीर्ण हुए थे। वे ज्ञानज्योति स्वरुप थे और उनकी दिव्यप्रभा अपूर्व थी। उन्हें समस्त प्राणियों से समान प्रेम था। वे निष्काम तथा नित्यमुक्त थे। उनकी दृष्टि में शत्रु, मित्र, राजा और भिक्षुक सब एक समान थे। पाठको ! अब कृपया उनका पराक्रम श्रवण करें। भक्तों के लिए उन्होंने अपना दिव्य गुणसमूह पूर्णतः प्रयोग किया और सदैव उनकी सहायता के लिये तत्पर रहे। उनकी इच्छा के बिना कोई भक्त उनके पास पहुँच ही न सकता था। यदि उनके शुभ कर्म उदित नहीं हुए हैं तो उन्हें बाबा की स्मृति भी कभी नहीं आई और न ही उनकी लीलाएँ उनके कानों तक पहुँच सकीं। तब फिर बाबा के दर्शनों का विचार भी उन्हें कैसे आ सकता था? अनेक व्यक्तियों की श्रीसाईबाबा के दर्शन की इच्छा होते हुए भी उन्हें बाबा के महासमाधि लेने तक कोई योग प्राप्त न हो सका। अतः **ऐसे व्यक्ति जो दर्शनलाभ से वंचित रहे हैं, यदि वे श्रद्धापूर्वक साईलीलाओं का श्रवण करेंगे तो उनकी साई-दर्शन की इच्छा बहुत कुछ अंशों तक तृप्त हो जाएगी।** भाग्यवश यदि किसी को किसी प्रकार बाबा के दर्शन हो भी गए तो वह वहाँ अधिक ठहर न सका। इच्छा होते हुए भी केवल बाबा की आज्ञा तक ही वहाँ रुकना संभव था और आज्ञा होते ही स्थान छोड़ देना आवश्यक हो जाता था। अतः यह सब उनकी शुभ इच्छा पर ही अवलंबित था।

काका महाजनी

एक समय काका महाजनी बम्बई से शिरड़ी पहुँचे। उनका विचार एक सप्ताह ठहरने और गोकुल अष्टमी उत्सव में सम्मिलित होने का था। दर्शन करने के बाद बाबा ने उनसे पूछा,'' तुम कब वापस जाओगे? उन्हें बाबा के इस प्रश्न पर आश्चर्य-सा हुआ। उत्तर देना तो आवश्यक ही था, इसलिए उन्होंने कहा,'' जब बाबा आज्ञा दें।'' बाबा ने अगले दिन जाने को कहा। बाबा के शब्द कानून थे, जिनका पालन करना नितान्त आवश्यक था। काका महाजनी ने तुरन्त ही प्रस्थान किया। जब वे बम्बई में अपने ऑफिस में पहुँचे तो उन्होंने अपने सेठ को अति उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा करते पाया। मुनीम के अचानक ही अस्वस्थ हो जाने के कारण काका की उपस्थिति अनिवार्य हो गई थी। सेठ ने शिरड़ी को जो पत्र काका के लिए भेजा था, वह बम्बई के पते पर उनको वापस लौटा दिया गया।

भाऊसाहेब धुमाल

अब एक विपरीत कथा सुनिए। एक बार भाऊसाहेब धुमाल एक मुकदमे के सम्बन्ध में निफाड़ के न्यायालय को जा रहे थे। मार्ग में वे शिरड़ी उतरे। उन्होंने बाबा के दर्शन किए और तत्काल ही निफाड़ को प्रस्थान करने लगे, परन्तु बाबा की स्वीकृति प्राप्त न हुई। उन्होंने उन्हें शिरड़ी में एक सप्ताह और रोक लिया। इसी बीच में निफाड़ के न्यायाधीश उदर-पीड़ा से ग्रस्त हो गए। इस कारण उनका मुकदमा किसी अगले दिन के लिए बढ़ाया गया। एक

सप्ताह बाद भाऊसाहेब को लौटने की अनुमति मिली। इस मामले की सुनवाई कई महीनों तक और चार न्यायाधीशों के पास हुई। फलस्वरुप धुमाल ने मुकदमे में सफलता प्राप्त की और उनका मुवक्किल मामले में बरी हो गया।

श्रीमती निमोणकर

श्री नानासाहेब निमोणकर, जो निमोण के निवासी और अवैतनिक न्यायाधीश थे, शिरड़ी में अपनी पत्नी के साथ ठहरे हुए थे। निमोणकर तथा उनकी पत्नी बहुत-सा समय बाबा की सेवा और उनकी संगति में व्यतीत किया करते थे। एक बार ऐसा प्रसंग आया कि उनका पुत्र बेलापुर में रोग से पीड़ित हो गया। तब उसकी माता ने वहाँ जाकर अपने पुत्र और अन्य संबंधियों से मिलने तथा कुछ दिन वहीं व्यतीत करने का निश्चय किया। परन्तु श्री नानासाहेब ने दूसरे दिन ही उन्हें लौट आने को कहा। वे असमंजस में पड़ गईं कि अब क्या करना चाहिए, परन्तु बाबा ने सहायता की। शिरड़ी से प्रस्थान करने के पूर्व वे बाबा के पास गई। बाबा साठेवाड़ा के समीप नानासाहेब और अन्य लोगों के साथ खड़े हुए थे। उन्होंने जाकर चरणवन्दना की और प्रस्थान करने की अनुमति माँगी। बाबा ने उनसे कहा ,''शीघ्र जाओ, घबड़ाओ नहीं; शान्त चित्त से बेलापूर में चार दिन सुखपूर्वक रहकर सब सम्बन्धियों से मिलो और तब शिरड़ी आ जाना। '' बाबा के शब्द कितने सामयिक थे। श्री.निमोणकर की आज्ञा बाबा द्वारा रद्द हो गई।

नासिक के मुले शास्त्रीःज्योतिषी

नासिक के एक कर्मनिष्ठ, अग्निहोत्री ब्राह्मण थे, जिनका नाम मुले शास्त्री था। इन्होंने छः शास्त्रों का अध्ययन किया था और ज्योतिष तथा सामुद्रिक शास्त्र में भी पारंगत थे। वे एक बार नागपुर के प्रसिद्ध करोड़पति श्री. बापूसाहेब बूटी से भेंट करने के बाद अन्य सज्जनों के साथ बाबा के दर्शन करने मस्जिद में गए। बाबा ने फल बेचने वाले से अनेक प्रकार के फल और अन्य पदार्थ खरीदे और मस्जिद में उपस्थित लोगों में उनको वितरित कर दिया। बाबा आम को इतनी चतुराई से चारों ओर से दबा देते थे कि चूसते ही सम्पूर्ण रस मुँह में आ जाता तथा गुठली और छिलका तुरन्त फेंक दिया जा सकता था। बाबा ने केले छीलकर भक्तों में बाँट दिए और उनके छिलके अपने लिये रख लिए। हस्तरेखा विशारद होने के नाते, मुले शास्त्री ने बाबा के हाथ की परीक्षा करने की प्रार्थना की। परन्तु बाबा ने उनकी प्रार्थना पर कोई ध्यान न देकर उन्हें चार केले दिए। इसके बाद सब लोग वाड़े को लौट आए। अब मुले शास्त्री ने स्नान किया और पवित्र वस्त्र धारण कर अग्निहोत्र आदि में जुट गए। बाबा भी अपने नियमानुसार लेण्डी को रवाना हो गये। जाते-जाते उन्होंने कहा कि कुछ गेरु लाना, आज भगुवा वस्त्र रँगाएँगे। बाबा के शब्दों का अभिप्राय किसी की समझ में न आया। कुछ समय के बाद बाबा लौटे। अब मध्याह्न बेला की आरती की तैयारियाँ प्रारम्भ हो गई थीं। बापूसाहेब जोग ने मुले से आरती में साथ करने के लिए पूछा। उन्होंने उत्तर दिया कि वे सन्ध्या समय बाबा के दर्शन को जाएँगे। तब जोग अकेले ही चले गए। बाबा के आसन ग्रहण करते ही भक्त लोगों ने उनकी पूजा की। अब आरती प्रारम्भ हो गई। बाबा ने कहा,'' उस नये ब्राह्मण से कुछ दक्षिणा लाओं''। बूटी स्वयं दक्षिणा लेने को गये और उन्होंने बाबा का सन्देश मुले शास्त्री को सुनाया। वे बुरी तरह घबड़ा गए। वे सोचने लगे कि '' मैं तो एक अग्निहोत्री ब्राह्मण हूँ, फिर मुझे दक्षिणा देना क्या उचित है? मानो कि बाबा महान् संत हैं, परन्तु मैं तो उनका शिष्य नहीं हूँ ?'' फिर भी उन्होंने सोचा कि जब बाबा जैसे महान् संत दक्षिणा माँग रहे हैं और बूटी जैसे एक करोड़पति लेने को आए हैं तो वे अवहेलना कैसे कर सकते हैं ? इसलिए वे अपने कृत्य को अधूरा ही छोड़कर तुरन्त बूटी के साथ मस्जिद को गए। वे अपने को शुद्ध और पवित्र तथा मस्जिद को अपवित्र जानकर, कुछ अन्तर से खड़े हो गये और दूर से ही हाथ जोड़कर उन्होंने बाबा के ऊपर पुष्प फेंके। एकाएक उन्होंने देखा कि बाबा के आसन पर उनके कैलासवासी गुरु घोलप स्वामी विराजमान हैं। अपने गुरु को वहाँ देखकर उन्हें महान् आश्चर्य हुआ। कहीं यह स्वप्न तो नहीं है? नहीं ! नहीं ! यह स्वप्न नहीं है। मैं पूर्ण जागृत हूँ। परन्तु जागृत होते हुए भी, मेरे गुरु महाराज यहाँ कैसे आ पहुँचे? कुछ समय तक उनके मुँह से एक भी शब्द न निकला। उन्होंने अपने को चिकोटी ली और पुनः विचार किया। परन्तु वे निर्णय न कर सके कि कैलासवासी गुरु घोलप स्वामी मस्जिद में कैसे आ पहुँचे? फिर सब सन्देह दूर करके वे आगे बढ़े और गुरु के चरणों पर गिर हाथ जोड़ कर स्तुति करने लगे। दूसरे भक्त तो बाबा की आरती गा रहे थे, परन्तु मुले शास्त्री अपने गुरु के नाम की ही गर्जना कर रहे थे। फिर सब जातिपाँति का अहंकार तथा पवित्रता और अपवित्रता की कल्पना त्याग कर वे गुरु के श्रीचरणों पर पुनः गिरके पड़े। उन्होंने आँखें मूँद लीं; परंतु खड़े होकर जब उन्होंने आँखें खोलीं तो बाबा को दक्षिणा माँगते हुए देखा। बाबा का आनन्दस्वरुप और उनकी अनिर्वचनीय शक्ति देख मुले शास्त्री आत्मविस्मृत हो गए। उनके हर्ष का पारावार न रहा। उनकी आँखें अश्रुपूरित होते हुए भी प्रसन्नता से नाच रही थीं। उन्होंने बाबा को पुनः नमस्कार किया और दक्षिणा दी। मुले शास्त्री कहने लगे कि '' मेरे सब संशय दूर हो गए। आज मुझे अपने गुरु के दर्शन हुए।'' बाबा की यह

अद्‌भुत लीला देखकर सब भक्त और मुले शास्त्री द्रवित हो गए। '' गेरु लाओ, आज भगवा वस्त्र रँगेंगे''- बाबा के इन शब्दों का अर्थ अब सब की समझ में आ गया। ऐसी अद्‌भुत लीला श्री साईबाबा की थी।

डॉक्टर

एक समय एक मामलतदार अपने एक डॉक्टर मित्र के साथ शिरड़ी पधारे। डॉक्टर का कहना था कि मेरे इष्ट श्रीराम हैं। मैं किसी यवन को मस्तक न नमाऊँगा। अतः वे शिरड़ी जाने में असहमत थे। मामलतदार ने समझाया कि '' तुम्हें नमन करने को कोई बाध्य न करेगा और नहीं तुम्हें कोई ऐसा करने को कहेगा। अतः मेरे साथ चलो, आनन्द रहेगा।'' वे शिरड़ी पहुँचे और बाबा के दर्शन को गए। परन्तु डॉक्टर को ही सबसे आगे जाते देख और बाबा की प्रथम ही चरण-वन्दना करते देख सब को बड़ा विस्मय हुआ। लोगों ने डॉक्टर से अपना निश्चय बदलने और इस भाँति एक यवन को दंडवत् करने का कारण पूछा । डॉक्टर ने बतलाया कि बाबा के स्थान पर उन्हें अपने प्रिय इष्ट देव श्रीराम के दर्शन हुए और इसलिए उन्होंने नमस्कार किया। जब वे ऐसा कह ही रहे थे, तभी उन्हें साईबाबा का रुप पुनः दीखने लगा । वे आश्चर्यचकित होकर बोले-'' क्या यह स्वप्न है? ये यवन कैसे हो सकते है? अरे ! अरे! यह तो पूर्ण योग-अवतार हैं।'' दूसरे दिन से उन्होंने उपवास करना प्रारम्भ कर दिया । उन्होंने प्रतिज्ञा की कि जब तक बाबा स्वयं बुलाकर आशीर्वाद नहीं देंगे, तब तक मस्जिद में कदापि न जाऊँगा। इस प्रकार तीन दिन व्यतीत हो गए । चौथे दिन उनका एक इष्ट मित्र खानदेश से शिरड़ी आया। वे दोनों मस्जिद में बाबा के दर्शन करने गए। नमस्कार होने के बाद बाबाने डॉक्टर से पूछा, '' आपको बुलाने का कष्ट किसने किया? आप यहाँ कैसे पधारे ?'' यह जटिल और सूचक प्रश्न सुनकर डॉक्टर द्रवित हो गए और उसी रात्रि को बाबा ने उनपर कृपा की। डॉक्टर को निद्रा में ही परमानन्द का अनुभव हुआ। वे अपने शहर लौट आए तो भी उन्हें १५ दिनों तक वैसा ही अनुभव होता रहा । इस प्रकार उनकी साईभक्ति कई गुणा बढ़ गई।

उपर्युक्त कथाओं की शिक्षा, विशेषतः मुले शास्त्री की, यही है कि हमें अपने गुरु में दृढ विश्वास होना चाहिए। अगले अध्याय में बाबा की अन्य लीलाओं का वर्णन होगा।

।। श्री सद्‌गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ।।

।। अथ श्रीसाईसच्चरित।। ।। अध्याय १३ ।।

अन्य कईं लीलाएँ- रोगनिवारण (१) भीमाजी पाटील (२) बाला गणपत दर्जी (३) बापूसाहेब बूटी (४) आलंदीस्वामी (५) काका महाजनी (६) हरदा के दत्तोपंत।

माया की अभेद्य शक्ति

बाबा के शब्द सदैव संक्षिप्त, अर्थपूर्ण, गुढ़ और विद्वत्तापूर्ण तथा समतोल रहते थे। वे सदा निश्चिंत और निर्भय रहते थे। उनका कथन था कि '' मैं फकीर हूँ, न तो मेरी स्त्री ही है और न घर-द्वार ही। सब चिंताओं को त्याग कर,मैं एक ही स्थान पर रहता हूँ। फिर भी माया मुझे कष्ट पहुँचाया करती है। मैं स्वयं को तो भूल चुका हूँ, परन्तु माया को कदापि नहीं भूल सकता, क्योंकि वह मुझे अपने चक्र में फँसा लेंती है। श्रीहरि की यह माया ब्रह्मादि को भी नहीं छोड़ती, फिर मुझ जैसे फकीर का तो कहना ही क्या है? परन्तु जो हरि की शरण लेंगे, वे उनकी कृपा से मायाजाल से मुक्त हो जायेंगे।'' इस प्रकार बाबा ने माया की शक्ति का परिचय दिया। भगवान् श्रीकृष्ण भागवत में उद्धव से कहते हैं कि ''सन्त मेरे जीवित स्वरुप है'' और बाबा का भी कहना यही था कि **वे भाग्यशाली, जिनके समस्त पाप नष्ट हो गए हों वे ही मेरी उपासना की ओर अग्रसर होते हैं। यदि तुम केवल ' साई साई, का ही स्मरण करोगे तो मैं तुम्हें भवसागर से पार उतार दूँगा**। इन शब्दों पर विश्वास करो, तुम्हें अवश्य लाभ होगा। मेरी पूजा के निमित्त कोई सामग्री या अष्टांग योग की भी आवश्यकता नहीं है। मैं तो भक्ति में ही निवास करता हूँ।'' अब आगे देखिए कि अनाश्रितों के आश्रयदाता साई ने भक्तों के कल्याणर्थ क्या-क्या किया ।

भीमाजी पाटीलः सत्य साई व्रत

नारायण गाँव (तहसील जुन्नर, जिला पूना) के एक महानुभाव भीमाजी पाटील को सन् १९०९ में वक्षस्थल में एक भयंकर रोग हुआ, जो आगे चल कर क्षय रोग में परिणत हो गया। उन्होंने अनेक प्रकार की चिकित्सा की, परन्तु लाभ कुछ न हुआ। अन्त में हताश होकर उन्होंने भगवान् से प्रार्थना की, ''हे नारायण! हे प्रभो ! मुझ अनाथ की कुछ सहायता करो !'' यह तो विदित ही है कि जब हम सुखी रहते है तो भगवत्-स्मरण नहीं करते, परन्तु ज्यों ही दुर्भाग्य घेर लेता है और दुर्दिन आते है, तभी हमें भगवान की याद आती है। **१** इसीलिए भीमाजी ने भी ईश्वर को पुकारा। उन्हें विचार आया कि क्यों न साईबाबा के परम भक्त श्री. नानासाहेब चाँदोरकर से इस विषय में परामर्श लिया जाए और इसी हेतु उन्होंने अपनी स्थिति पूर्ण विवरण सहित उनके पास लिख भेजी और उचित मार्गदर्शन के लिए प्रार्थना की। प्रत्युत्तर में श्री.नानासाहेब ने लिख दिया कि '' अब तो केवल एक ही उपाय शेष है और वह है साईबाबा के चरणकमलों की शरणागति ।'' नानासाहेब के वचनों पर विश्वास कर उन्होंने शिरड़ी-प्रस्थान की तैयारी की। उन्हें शिरड़ी में लाया गया और मस्जिद में ले जाकर लिटाया गया। श्री. नानासाहेब और शामा भी इस समय वहीं उपस्थित थे। बाबा बोले कि '' यह पूर्व जन्म के बुरे कर्मों का ही फल है। इस कारण मैं इस झंझट में नहीं पड़ना चाहता।

१. दुख में सुमिरन सब करै, सुख में करै न कोय।
जो सुख में सुमिरन करै, दुख काहे को होय।।

यह सुनकर रोगी अत्यन्त निराश होकर करुणापूर्ण स्वर में बोला कि '' मैं बिल्कुल निस्सहाय हूँ और अन्तिम आशा लेकर आपके श्री-चरणों में आया हूँ। आपसे दया की भीख माँगता हूँ। हे दीनों के शरण ! मुझ पर दया करो ।'' इस प्रार्थना से बाबा का हृदय द्रवित हो गया और वे बोले कि '' अच्छा, ठहरो ! चिन्ता न करो। तुम्हारे दुःखों का अन्त शीघ्र होगा। **कोई कितना भी दुःखित और पीड़ित क्यों न हो, जैसे ही वह मस्जिद की सीढ़ियों पर पैर रखता है, वह सुखी हो जाता है।** मस्जिद का फकीर बहुत दयालु है और वह तुम्हारा रोग भी निर्मूल कर देगा। वह तो सब लोंगों पर प्रेम और दया रख कर रक्षा करता है।'' रोगी को हर पाँचवें मिनट पर

खून की उल्टियाँ हुआ करती थीं, परन्तु बाबा के समक्ष उसे कोई उल्टी न हुई। जिस समय से बाबा ने अपने श्री-मुख से आशा और दयापूर्ण शब्दों में उक्त उद्‌गार प्रगट किए, उसी समय से रोग ने भी पल्टा खाया। बाबा ने रोगी को भीमाबाई के घर में ठहरने को कहा। यह स्थान इस प्रकार के रोगी को सुविधाजनक और स्वास्थ्यप्रद तो न था, फिर भी बाबा की आज्ञा कौन टाल सकता था? वहाँ पर रहते हुए बाबाने दो स्वप्न देकर उसका रोग हरण कर लिया। पहले स्वप्न में रोगी ने देखा कि वह एक विद्यार्थी है और शिक्षक के सामने कविता मुखाग्र न सुना सकने के दण्डस्वरुप बेतों की मार से असहनीय कष्ट भोग रहा है। दूसरे स्वप्न में उसने देखा कि कोई हृदय पर नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे की ओर पत्थर घुमा रहा है, जिससे उसे असह्य पीड़ा हो रही है। स्वप्न में इस प्रकार कष्ट पाकर वह स्वस्थ हो गया और घर लौट आया। वह कभी-कभी शिरड़ी आता और साईबाबा की दया का स्मरण कर साष्टांग प्रणाम करता था। बाबा अपने भक्तों से किसी वस्तु की आशा न रखते थे। वे तो केवल स्मरण, दृढ़ निष्ठा और भक्ति के भूखे थे। महाराष्ट्र के लोग प्रतिपक्ष या प्रतिमास सदैव सत्यनारायण का व्रत किया करते है। परन्तु अपने गाँव पहुँचने पर भीमाजी पाटील ने सत्यनारायण व्रत के स्थान पर एक नया ही '**सत्य साई व्रत** ' प्रारम्भ कर दिया।

बाला गणपत दर्जी

एक दूसरे-भक्त, जिनका नाम बाला गणपत दर्जी था, एक समय जीर्ण ज्वर से पीड़ित हुए। उन्होंने सब प्रकार की दवाइयाँ और काढ़े लिए, परन्तु इनसे कोई लाभ न हुआ। जब ज्वर तिलमात्र भी न घटा तो वे शिरड़ी दौड़े आए और बाबा के श्रीचरणों की शरण ली। बाबा ने उन्हें विचित्र आदेश दिया कि '' लक्ष्मी मंदिर के पास जाकर एक काले कुत्ते को थोड़ासा दही और चावल खिलाओ।'' वे यह समझ न सके कि इस आदेश का पालन कैसे करें? घर पहुँचकर चावल और दही लेकर वे लक्ष्मी मंदिर पहुँचे, जहाँ उन्हें एक काला कुत्ता पूँछ हिलाते हुए दिखा । उन्होंने वह चावल और दही उस कुत्ते के सामने रख दिया, जिसे वह तुरन्त ही खा गया। इस चरित्र की विशेषता का वर्णन कैसे करुँ कि उपर्युक्त क्रिया करने मात्र से ही बाला दर्जी का ज्वर हमेशा के लिए जाता रहा।

बापूसाहेब बूटी

श्रीमान् बापूसाहेब बूटी एक बार अम्लपित्त के रोग से पीड़ित हुए । उनकी आलमारी में अनेक औषधियाँ थीं, परन्तु कोई भी गुणकारी न हो रही थी। बापूसाहेब अम्लपित्त के कारण अति दुर्बल हो गए और उनकी स्थिति इतनी गम्भीर हो गई कि वे अब मस्जिद में जाकर बबा के दर्शन करने में भी असमर्थ थे। बाबा ने उन्हें बुलाकर अपने सम्मुख बिठाया और बोले, ''सावधान,अब तुम्हें दस्त न लगेंगे।'' अपनी उँगली उठाकर फिर कहने लगे, '' उलटियाँ भी अवश्य रुक जाएँगी। '' बाबा ने ऐसी कृपा की कि रोग समूल नष्ट हो गया और बूटीसाहेब पूर्ण स्वस्थ हो गए।

एक अन्य अवसर पर भी वे हैजा से पीड़ित हो गए । फलस्वरुप उनकी प्यास अधिक तीव्र हो गई । डॉ. पिल्ले ने हर तरह के उपचार किए, परन्तु स्थिति न सुधरी। अन्त में वे फिर बाबा के पास पहुँचे और उनसे तृषारोग निवारण की औषधि के लिए प्रार्थना की। उनकी प्रार्थना सुनकर बाबा ने उन्हें '' मीठे दूध में उबाला हुआ बादाम, अखरोट और पिस्ते का काढ़ा पियो।'' - यह औषधि बतला दी।

दूसरा डॉक्टर या हकीम बाबा की बतलाई हुई इस औषधि को प्राणघातक ही समझता, परन्तु बाबा की आज्ञा का पालन करने से यह रोगनाशक सिद्ध हुई और आश्चर्य की बात है कि रोग समूल नष्ट हो गया।

आलंदी के स्वामी

आलंदी के एक स्वामी बाबा के दर्शनार्थ शिरड़ी पधारे। उनके कान में असह्य पीड़ा थी, जिसके कारण उन्हें एक पल भी विश्राम करना दुष्कर था। उनकी शल्य चिकित्सा भी हो चुकी थी, फिर भी स्थिति में कोई विशेष परिवर्त्तन न हुआ था। दर्द भी अधिक था। वे किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर वापिस लौटने के लिए बाबा से अनुमति माँगने गए। यह देखकर शामा ने बाबा से प्रार्थना की कि '' स्वामी के कान में अधिक पीड़ा है। आप इन पर कृपा करो।'' बाबा आश्वासन देकर बोले, '' अल्लाह अच्छा करेगा।'' स्वामीजी वापस पूना लौट गए और एक सप्ताह के बाद उन्होंने शिरडी को पत्र भेजा कि '' पीड़ा शान्त हो गई है। परन्तु सूजन अभी पूर्ववत् ही है ।'' सूजन दूर हो जाय, इसके लिए वे शल्यचिकित्सा(ऑपरेशन) कराने बम्बई गए। शल्यचिकित्सा विशेषज्ञ (सर्जन) ने जाँच करने के बाद कहा कि ''शल्यचिकित्सा (ऑपरेशन) की कोई आवश्यकता नहीं।'' बाबा के शब्दों का गूढ़ार्थ हम निरे मूर्ख क्या समझें?

काका महाजनी

काका महाजनी नाम के एक अन्य भक्त को अतिसार की बीमारी हो गई। बाबा का सेवा-क्रम कहीं टूट न जाए, इस कारण वे एक लोटा पानी भरकर मस्जिद के एक कोने में रख देते थे, ताकि शंका होने पर शीघ्र ही बाहर जा सकें । श्री साईबाबा को तो सब विदित ही था। फिर भी काका ने बाबा को सूचना इसलिए नहीं दी कि वे रोग से शीघ्र ही मुक्ति पा जाएगे। मस्जिदी में फर्श बनाने की स्वीकृति बाबा से प्राप्त हो चुकी थी, परन्तु जब कार्य प्रारम्भ हुआ तो बाबा क्रोधित हो गए और उत्तेजित होकर चिल्लाने लगे, जिससे भगदड़ मच गई। जैसे ही काका भागने लगे, वैसे ही बाबा ने उन्हें पकड़ लिया और अपने सामने बैठा लिया। इस गड़बड़ी में कोई आदमी मूँगफली की एक छोटी थैली वहाँ भूल गया। बाबा ने एक मुट्ठी मूँगफली उसमें से निकाली और छील कर दाने काका को खाने के लिए दे दिए। क्रोधित होना, मूँगफली छीलना और उन्हें काका को खिलाना, यह सब कार्य एक साथ ही चलने लगा। स्वयं बाबा ने भी उसमें से कुछ मूँगफली खाई । जब थैली खाली हो गई तो बाबा ने कहा कि मुझे प्यास लगी है। जाकर थोड़ा जल ले आओ। काका एक घड़ा पानी भर लाए और दोनों ने उसमें से पानी पिया। फिंर बाबा बोले कि '' अब तुम्हारा अतिसार रोग दूर हो गया । तुम अपने फर्श के कार्य की देखभाल कर सकते हो। '' थोड़े ही समय में भागे हुए लोग भी लौट आए। कार्य पुनः प्रारम्भ हो गया। काका का रोग अब प्रायः दूर हो चुका था। इस कारण वे कार्य में संलग्न हो गए। क्या मूँगफली अतिसार रोग की औषधि है? इसका उत्तर कौन दे? वर्त्तमान चिकित्सा प्रणाली के अनुसार तो मूँगफली से अतिसार में वृद्धि ही होती है, न कि मुक्ति। इस विषय में सदैव की भाँति बाबा के श्री वचन ही औषधिस्वरुप थे।

हरदा के दत्तोपन्त

हरदा के एक सज्जन, जिनका नाम श्री दत्तोपन्त था, १४ वर्ष से उदररोग से पीड़ित थे। किसी भी औषधि से उन्हें लाभ न हुआ। अचानक कहीं से बाबा की कीर्त्ति उनके कानों में पड़ी कि उनकी दृष्टि मात्र से ही रोगी स्वस्थ हो जाते है। अतः वे भी भाग कर शिरड़ी आए और बाबा के चरणों की शरण ली। बाबा ने प्रेम -दृष्टि से उनकी ओर देखकर आशीर्वाद देकर अपना वरद हस्त उनके मस्तक पर रखा। आशीष और उदी प्राप्त कर वे स्वस्थ हो गए तथा भविष्य में उन्हें फिर कोई पीड़ा न हुई।

इसी तरह के निम्नलिखित तीन चमत्कार इस अध्याय के अन्तमें टिप्पणी में दिए गए हैं-

(१) माधवराव देशपांडे बवासीर रोग से पीड़ित थे। बाबा की आज्ञानुसार सोनामुखी का काढ़ा सेवन करने से वे नीरोग हो गए । दो वर्ष पश्चात् उन्हें पुनः वही पीड़ा उत्पन्न हुई। बाबा से बिना परामर्श लिए वे उसी काढ़े का सेवन करने लगे । परिणाम यह हुआ कि रोग अधिक बढ़ गया । परन्तु बाद में बाबा की कृपा से शीघ्र ही ठीक हो गया।

(२) काका महाजनी के बड़े भाई गंगाधरपन्त को कुछ वर्षो से सदैव उदर में पीड़ा बनी रहती थी। बाबा की कीर्त्ति सुनकर वे भी शिरड़ी आये और आरोग्य-प्राप्ति के लिए प्रार्थना करने लगे । बाबा ने उनके उदर को स्पर्श कर कहा, '' अल्लाह अच्छा करेगा।'' इसके पश्चात् तुरन्त ही उनकी उदर-पीड़ा मिट गई और वे पूर्णतः स्वस्थ हो गए।

श्री नानासाहेब चाँदोरकर को भी एक बार उदर में बहुत पीड़ा होने लगी। वे दिनरात मछली के समान तड़पने लगे । डॉक्टरों ने अनेक उपचार किए, परन्तु कोई परिणाम न निकला। अन्त में वे बाबा की शरण में आए । बाबाने उन्हें घी के साथ बर्फी खाने की आज्ञा दी। इस औषधि के सेवन से वे पूर्ण स्वस्थ हो गए।

इन सब कथाओं से यही प्रतीत होता है कि सच्ची औषधि, जिससे अनेकों को स्वास्थ्य -लाभ हुआ, वह बाबा के केवल श्रीमुख से उच्चारित वचनों एवं उनकी कृपा का ही प्रभाव था।

।। श्री सद्‌गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु।।

सप्ताह पारायणःद्वितीय विश्राम

।। अथ श्रीसाईसच्चरित।। ।। अध्याय १४।।

नांदेड़ के रतनजी वाड़िया, संत मौला साहेब, दक्षिणा मीमांसा, गणपतराव बोडस, श्रीमती तर्खड, दक्षिणा का मर्म।

श्री साईबाबा के वचनों और कृपा द्वारा किस प्रकार असाध्य रोग भी निर्मूल हो गए, इसका वर्णन पिछले अध्याय में किया जा चुका है। अब बाबा ने किस प्रकर रतनजी वाड़िया को अनुगृहीत किया तथा किस प्रकार उन्हें पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई, इसका वर्णन इस अध्याय में होगा।

इस संत की जीवनी सब प्रकार से प्राकृतिक और मधुर है। उनके अन्य कार्य भी जैसे भोजन, चलना - फिरना तथा स्वाभाविक अमृतोपदेश बड़े ही मधुर हैं। वे आनन्द के अवतार हैं। इस परमानंद का उन्होंने अपने भक्तों को भीं रसास्वादन कराया और इसीलिए उन्हें उनकी चिरस्मृति बनी रही। भिन्न -भिन्न प्रकार के कर्म और कर्त्तव्यों की अनेक कथाएँ भक्तों को उनके द्वारा प्राप्त हुई, जिससे वे सत्त्व मार्ग का अवलम्बन कर सके। बाबा की सदैव यही इच्छा थी कि लोग संसार में सुखी जीवन व्यतीत करें और वे सदैव जागरुक रहकर अपने जीवन का परम लक्ष्य, आत्मानुभूति (या ईश्वरदर्शन) अवश्य प्राप्त करें। **पिछले जन्मों के शुभ कर्मो के फलस्वरुप ही यह देह प्राप्त हुई है और उसकी सार्थकता तभी है, जब उसकी सहायता से हम इस जीवन में भक्ति और मोक्ष प्राप्त कर सकें ।** हमें अपने अन्त और जीवन के लक्ष्य के हेतु सदैव. सावधान तथा तत्पर रहना चाहिए।

यदि तुम नित्य श्री साई की लीलाओं का श्रवण करोगे तो तुम्हें उनका सदैव दर्शन होता रहेगा। दिनरात उनका हृदय में स्मरण करते रहो। इस प्रकार आचरण करने से मन की चंचलता शीघ्र नष्ट हो जाएगी। यदि इसका निरंतर अभ्यास किया गया तो तुम्हें चैतन्य-घन से अभिन्नता प्राप्त हो जाएगी।

नांदेड़ के रतनजी

अब हम इस अध्याय की मूल कथा का वर्णन करते हैं। नांदेड़ (निजाम रियासत) में रतनजी शापुरजी वाड़िया नामक एक प्रसिद्ध व्यापारी रहते थे। उन्होंने व्यापार में यथेष्ठ धनराशि संग्रह कर ली थी। उनके पास अतुलनीय सम्पत्ति, खेत और चरोहर तथा कई प्रकार के पशु, घोड़े, गधे, खच्चर आदि और गाड़ियाँ भी थीं। वे अत्यन्त भाग्यशाली थे। यद्यपि बाह्य दृष्टि से वे अधिक सुखी और सन्तुष्ट प्रतीत होते थे, परन्तु यथार्थ में वे वैसे न थे। विधाता की रचना कुछ ऐसी विचित्र है कि इस संसार में पूर्ण सुखी कोई नहीं और धनाढ्य रतनजी भी इसके अपवाद न थे। वे परोपकारी तथा दानशील थे। वे दीनों को भोजन और वस्त्र वितरण करते तथा सभी लोगों की अनेक प्रकार से सहायताकिया करते थे। उन्हें लोग अत्यन्त सुखी समझते थे। किन्तु दीर्घ काल तक संतान न होने के कारण उनके हृदय में संताप अधिक था। जिस प्रकार प्रेम तथा भक्तिरहित कीर्तन, वाद्यरहित संगीत, यज्ञोपवीतरहित ब्राह्मण, व्यावहारिक ज्ञानरहित कलाकार, पश्चातापरहित तीर्थयात्रा और कंठमाला (मंगल सूत्र) रहित अलंकार, उत्तम प्रतीत नहीं होते, उसी प्रकार संतानरहित गृहस्थ का घर भी सूना ही रहता है। रतनजी सदैव इसी चिन्ता में निमग्न रहते थे। वे मन ही मन कहते, '' क्या ईश्वर की मुझ पर कभी दया न होगी? क्या मुझे कभी पुत्र की प्राप्ति नहीं होगी?'' इसके लिए वे सदैव उदास रहते थे। उन्हें भोजन से भी अरुचि हो गई। पुत्र की प्राप्ति कब होगी, यही चिन्ता उन्हें सदैव घेरे रहती थी। उनकी दासगणू महाराज पर दृढ निष्ठा थी। उन्होंने अपना हृदय उनके सम्मुख खोल दिया, तब उन्होंने श्रीसाई समर्थ की शरण जाने और उनसे संतान-प्राप्ति के लिए प्रार्थना करने का परामर्श दिया। रतनजी को भी यह विचार रुचिकर प्रतीत हुआ और उन्होंने शिरड़ी जाने का निश्चय किया । कुछ दिनों के उपरांत वे शिरड़ी आए और बाबा के दर्शन कर उनके चरणों पर गिरे। उन्होंने एक सुन्दर हार बाबा को पहना कर बहुत से फल-फूल भेंट किए। तत्पश्चात् आदर सहित बाबा के पास बैठकर इस प्रकार प्रार्थना करने लगे, '' अनेक आपत्तिग्रस्त लोग आप के पास आते हैं और आप उनके कष्ट तुरंत दूर कर देते हैं। यही कीर्ति सुनकर मैं भी बड़ी आशा से आपके श्रीचरणों में आया हूँ । मुझे बड़ा भरोसा हो गया है, कृपया मुझे निराश न

कीजिए।'' श्रीसाईबाबा ने उनसे पाँच रुपये दक्षिणा माँगी, जो वे देना ही चाहते थे। परन्तु बाबा ने पुनः कहा, '' मुझे तुमसे तीन रुपये चौदह आने पहले ही प्राप्त हो चुके हैं। इसलिए केवल शेष रुपये ही दो। '' यह सुनकर रतनजी असमंजस में पड गए । बाबा के कथन का अभिप्राय उनकी समझं में न आया। वे सोचने लगे कि यह ''शिरड़ी आने का मेरा प्रथम ही अवसर है और यह बड़े आश्चर्य की बात है कि इन्हें तीन रुपये चौदह आने पहले ही प्राप्त हो चुके हैं।'' वे यह पहेली हल न कर सके। वे बाबा के चरणों के पास ही बैठे रहे तथा उन्हें शेषं दक्षिणा अर्पित कर दी। उन्होंने अपने आगमन का हेतु बतलाया और पुत्र-प्राप्ति की प्रार्थना की। बाबा को दया आ गई। वे बोले, ''चिन्ता त्याग दो, अब तुम्हारे दुर्दिन समाप्त हो गए हैं।'' इसके बाद बाबा ने उदी देकर अपना वरद हस्त उनके मस्तक पर रखकर कहा, '' अल्लाह तुम्हारी इच्छा पूरी करेगा।''

बाबा की अनुमति प्राप्त कर रतनजी नांदेड़ लौट आए और शिरड़ी में जो कुछ हुआ, उसे दासगणू को सुनाया। रतनजी ने कहा , '' सब कार्य ठीक ही रहा। बाबा के शुभ दर्शन हुए; उनका आशीर्वाद और प्रसाद भी प्राप्त हुआ; परन्तु वहाँ की एक बात समझ में नहीं आई। वहाँ पर बाबा ने कहा था कि ''मुझे तीन रुपये चौदह आने पहले ही प्राप्त हो चुके हैं।'' कृपया समझाइए कि इसका क्या अर्थ है? इससे पूर्व मैं शिरड़ी कभी भी नहीं गया। फिर बाबा को वे रुपए कैसे प्राप्त हो गए, जिसका उन्होंने उल्लेख किया ?'' दासगणू के लिए भी यह एक पहेली ही थी। बहुत दिनों तक वे इस पर विचार करते रहे। कई दिनों के पश्चात उन्हें स्मरण हुआ कि कुछ दिन पहले रतनजी ने एक यवन संत मौला साहेब को अपने घर आतिथ्य के लिए निमंत्रित किया था तथा इसके निमित्त उन्होंने कुछ धन व्यय किया था। मौला साहेब नांदेड़ के एक प्रसिद्ध सन्त थे, जो कुली का काम किया करते थे। जब रतनजी ने शिरड़ी जाने का निश्चय किया था, उसके कुछ दिन पूर्व ही मौला साहेब अनायास ही रतनजी के घर आए। रतनजी उनसे अच्छी तरह परिचित थे तथा उनसे प्रेम भी अधिक करते थे। इसलिए उनके सत्कार में उन्होंने एक छोटे से जलपान की व्यवस्था भी की थी। दासगणू ने रतनजी से आतिथ्य के खर्च की सूची माँगी और यह जानकर सबको आश्चर्य हुआ कि खर्चा ठीक तीन रुपये चौदह आने ही हुआ था; न इससे कम था और न अधिक। सबको बाबा की त्रिकालज्ञता विदित हो गई। यद्यपि वे शिरड़ी में विराजमान थे, परन्तु शिरड़ी के बाहर क्या हो रहा है, इसका उन्हें पूरा-पूरा ज्ञान था। यथार्थ में बाबा भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान के पूर्ण ज्ञाता और प्रत्येक आत्मा तथा हृदय के साथ संबद्ध थे। अन्यथा मौला साहेब के स्वागतार्थ खर्च की गई रकम बाबा को कैसे विदित हो सकती थी?

रतनजी इस उत्तर से सन्तुष्ट हो गए और उनकी साईचरणों में प्रगाढ़ प्रीति हो गई। उपयुक्त समय के पश्चात् उनके यहाँ एक पुत्र का जन्म हुआ, जिससे उनके हर्ष का पारावार न रहा। कहते हैं कि उनके यहाँ बारह संताने हुई; जिनमें से केवल चार शेष रहीं।

इस अध्याय के नीचे लिखा है कि बाबा ने रावबहादुर हरी विनायक साठे को उनकी पहली पत्नी की मृत्यु के पश्चात् दूसरा ब्याह करने पर पुत्ररत्न की प्राप्ति बतलाई। रावबहादुर साठे ने द्वितीय विवाह किया । प्रथम दो कन्याएँ हुई; जिससे वे बड़े निराश हुए, परन्तु तृतीय बार पुत्र प्राप्त हुआ। इस तरह बाबा के वचन सत्य निकले और वे सन्तुष्ट हो गए।

दक्षिणा मीमांसा

दक्षिणा के संबंध में कुछ अन्य बातों का निरुपण कर हम यह अध्याय समाप्त करेंगे । यह तो विदित ही है कि जो लोग बाबा के दर्शन को आते थे, उनसे बाबा दक्षिणा लिया करते थे। यहाँ किसी को भी शंका उत्पन्न हो सकती है कि जब बाबा फकीर और पूर्ण विरक्त थे तो क्या उनका इस प्रकार दक्षिणा ग्रहण करना और कांचन को महत्व देना उचित था? अब इस प्रश्न पर हम विस्तृत रुप से विचार करेंगे।

बहुत काल तक बाबा भक्तों से कुछ भी स्वीकार नहीं करते थे । वे जली हुई दियासलाईयाँ एकत्रित कर अपनी जेब में भर लेते थे। चाहे भक्त हो या और कोई; वे कभी किसी से कुछ भी नहीं माँगते थे। यदि किसी ने उनके सामने एक पैसा रख दिया तो वे उसे स्वीकार करके उससे तम्बाखू अथवा तेल आदि खरीद लिया करते थे। वे प्रायः बीड़ी या चिलम पिया करते थे। कुछ लोगों ने सोचा कि बिना कुछ भेंट किए सन्तों का दर्शन उचित नहीं है। इसलिए वे बाबा के सामने पैसे रखने लगे । यदि एक पैसा होता तो वे उसे जेब में रख लेते और यदि दो पैसे

हुए तो तुरन्त उसमें से एक पैसा वापस कर देते थे। जब बाबा की कीर्त्ति दूर-दूर तक फैली और लोगों के झुण्ड के झुण्ड बाबा के दर्शनार्थ आने लगे, तब बाबा ने उनसे दक्षिणा लेना आरम्भ कर दिया। श्रुति कहती है कि स्वर्ण मुद्रा के अभाव में भगवतपूजन भी अपूर्ण है। अतः जब ईश्वर-पूजन में मुद्रा आवश्यक है तो फिर सन्तपूजन में क्यों न हो ? इसीलिए शास्त्रों में कहा है कि ईश्वर, राजा, सन्त या गुरु के दर्शन, अपनी सामर्थ्यानुसार बिना कुछ अर्पण किए, कभी न करना चाहिए। उन्हें क्या भेंट दी जाए? अधिकतर मुद्रा या धन। इस सम्बन्ध में उपनिषदों में वर्णित नियमों का अवलोकन करें । बृहदारण्यक उपनिषद् में बताया गया है कि दक्ष प्रजापति ने देवता, मनुष्य और राक्षसों के सामने एक अक्षर 'द' का उच्चारण किया। देवताओं ने इसका अर्थ लगाया कि उन्हें दम अर्थात् आत्म-नियंत्रण का अभ्यास करना चाहिए। मनुष्यों ने समझा कि उन्हें दान का अभ्यास करना चाहिए तथा राक्षसों ने सोचा कि हमें दया का अभ्यास करना चाहिए। मनुष्यों को दान की सलाह दी गई। तैत्तिरीय उपनिषद् में दान व अन्य सत्व गुणों को अभ्यास में लाने की बात कही गयी है। दान के संबंध में लिखा हैः- '' विश्वासपूर्वक दान करो, उसके बिना दान व्यर्थ है। उदार हृदय तथा विनम्र बन कर, आदर और सहानुभूतिपूर्वक दान करो। '' भक्तों को कांचन -त्याग का पाठ पढाने तथा उनकी आसक्ति दूर करने और चित्त शूद्ध कराने के लिए ही बाबा सबसे दक्षिणा लिया करते थे। परन्तु उनकी एक विशेषता भी थी। बाबा कहा करते थे कि ''जो कुछ भी मैं स्वीकार करता हूँ, मुझे उसके शत गुणोंसे अधिक वापस करना पड़ता है।'' इसके अनेक प्रमाण हैं।

एक घटना

श्री. गणपतराव बोड़स, प्रसिद्ध कलाकार, अपनी आत्म- कथा में लिखते हैं कि बाबा के बार-बार आग्रह करने पर उन्होंने अपने रुपयोंकी थैली उनके सामने उँड़ेल दी। श्री बोड़स लिखते हैं कि इसका परिणाम यह हुआ कि जीवन में फिर उन्हें धन का अभाव कभी न हुआ तथा प्रचुर मात्रा में लाभ ही होता रहा। इसका एक भिन्न अर्थ भी है। अनेकों बार बाबा ने किसी प्रकार की दक्षिण स्वीकार भी नहीं की। इसके दो उदाहरण हैं। बाबा ने प्रो.सी.के. नारके से १५ रुपये दक्षिणा माँगी। वे प्रत्युत्तर में बोले कि मेरे पास तो एक पाई नहीं है। तब बाबा ने कहा कि ''मैं जानता हूँ, तुम्हारे पास कोई द्रव्य नहीं है, परन्तु तुम योगवासिष्ठ का अध्ययन तो करते हो, उसमें से ही दक्षिणा दो। '' यहाँ दक्षिणा का अर्थ है- पुस्तक से शिक्षा ग्रहण कर हृदयंगम करना, जोकि बाबा का निवासस्थान है।

(२) एक दूसरी घटना में , उन्होंने एक महिला श्रीमती आर. ए. तर्खड़ से छः रुपये दक्षिणा माँगी। महिला बहुत दुःखी हुई, क्योंकि उनके पास देने को कुछ भी न था। उनके पति ने उन्हें समझाया कि बाबा का अर्थ तो षड्रिपुओं से है, जिन्हें बाबा को समर्पित कर देना चाहिए। बाबा इस अर्थ से सहमत हो गए।
यह ध्यान देने योग्य है कि बाबा के पास दक्षिणा के रुप में बहुत-सा द्रव्य एकत्रित हो जाता था। सब द्रव्य वे उसी दिन व्यय कर देते और दूसरे दिन फिर सदैव की भाँति निर्धन बन जाते थे। जब उन्होंने महासमाधि ली तो १० वर्ष तक हजारों रुपया दक्षिणा मिलने पर भी उनके पास स्वल्प राशि ही शेष थी।संक्षेप में दक्षिणा लेने का मुख्य ध्येय तो भक्तों को केवल शुद्धीकरण का पाठ ही सिखाना था।

दक्षिणा का मर्म

ठाणे के श्री. बी.व्ही. देव, (सेवा-निवृत्त प्रान्त मामलतदार, जो बाबा के परम भक्त थे) ने इस विषय पर एक लेख (साई लीला पत्रिका, भाग ७ पृष्ठ ६२६) अन्य विषयों सहित प्रकाशित किया है, जो निम्न प्रकार हैः - '' बाबा हरएक व्यक्ति से दक्षिणा नहीं लेते थे। यदि बाबा के बिना माँगे किसी ने दक्षिणा भेंट की तो वे कभी तो स्वीकार कर लेते और कभी अस्वीकार भी कर देते थे। वे केवल भक्तों से ही कुछ माँगा करते थे। उन्होंने उन लोगों से कभी कुछ न माँगा, जो सोचते थे कि बाबा के माँगने पर ही दक्षिणा देंगे। यदि किसी ने उनकी इच्छा के विरुद्ध दक्षिणा दे दी तो वे वहाँ से उसे उठाने को कह देते थे। वे यथायोग्य राशि भक्तों की इच्छा, भक्ति और सुविधा के अनुसार ही उनसे माँगा करते थे। स्त्री और बालकों से भी वे दक्षिणा ले लेते थे। उन्होंने सभी धनाढयों या निर्धनों से कभी दक्षिणा नहीं माँगी। बाबा के माँगने पर भी जिन्होंने दक्षिणा न दी, उनसे वे कभी क्रोधित नहीं हुए। यदि किसी मित्र द्वारा उन्हें दक्षिणा भिजवाई गई होती और उसका उसे स्मरण न रहता तो बाबा किसी न किसी प्रकार उसे स्मरण कराकर वह दक्षिणा ले लेते थे। कुछ अवसरों पर वे दक्षिणा की राशि में से कुछ अंश लौटा भी देते और देने वालों को सँभाल कर रखने या पूजन में रखने के लिए कह देते थे। इससे दाता या भक्त को बहुत लाभ पहुँचता था। यदि किसी ने अपनी इच्छित राशि से अधिक भेट की तो वे वह अधिक राशि लौटा देते थे। किसी-किसी से तो वे उसकी इच्छित राशि से भी अधिक माँग बैठते थे और यदि उसके पास नहीं होती तो दूसरे से उधार लेने या दूसरों से माँगने को भी कहते थे। किसी-किसी से तो दिन में ३-४ बार दक्षिणा माँगा करते थे।

दक्षिणा में एकत्रित राशि में से बाबा अपने लिए बहुत थोड़ा खर्च किया करते थे। जैसे-चिलम पीने की तंबाखू और धूनी के लिए लकड़ियाँ मोल लेने के लिये आदि। शेष अन्य व्यक्तियों को विभिन्न राशियों में भिक्षास्वरुप दे देते थे। शिरड़ी संस्थान की समस्त सामग्रियाँ राधाकृष्णमाई की प्रेरणा से ही धनी भक्तों ने एकत्र की थीं। अधिक मूल्यवाले पदार्थ लाने वालों से बाबा अति क्रोधित हो जाते और अपशब्द कहने लगते थे । उन्होंने श्री नानासाहेब चाँदोकर से कहा कि मेरी सम्पत्ति केवल एक कौपीन और टमरेल है। लोग बिना कारण ही मूल्यवान पदार्थ लाकर मुझे दुःखित करते है ं। कामिनी और कांचन मार्ग में दो मुख्य बाधाएँ हैं और बाबा ने इसके लिए दो पाठशालाएँ खोली थीं। यथा- दक्षिणा ग्रहण करना और राधाकृष्णमाई के यहाँ भेजना -इस बात की परीक्षा करने के लिए कि क्या उनके भक्तों ने इन आसक्तियों से छुटकारा पा लिया है या नहीं। इसीलिए जब कोई आता तो वे उनसे दक्षिणा माँगते और उनसे शाला में (राधाकृष्णमाई के घर) जाने को कहते। यदि वे इन परीक्षाओं में उत्तीर्ण हो गए अर्थात् यह सिद्ध हुआ कि वे कामिनी और कांचन की आसक्ति से विरक्त हैं तो बाबा की कृपा और आशीर्वाद से उनकी आध्यात्मिक उन्नति निश्चय ही हो जाती थी।

श्री देव ने गीता और उपनिषद् से घटनाएँ उद्धृत की हैं और कहते हैं कि किसी तीर्थस्थान में किसी पूज्य सन्त को दिया हुआ दान दाता को बहुत कल्याणकारी होता है। शिरड़ी और शिरड़ी के प्रमुख देवता साईबाबा से पवित्रं और है ही क्या?

।। श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ।।

।। अथ श्रीसाईसच्चरित।। ।। अध्याय १५ ।।

नारदीय कीर्तन पद्धति, श्री चोलकर की शक्कररहित चाय, दो छिपकलियाँ।

पाठकों को स्मरण होगा कि छठें अध्याय के अनुसार शिरड़ी में राम नवमी उत्सव मनाया जाता था। यह कैसे प्रारम्भ हुआ और पहले वर्ष ही इस अवसर पर कीर्त्तन करने के लिए एक अच्छे हरिदास के मिलने में क्या-क्या कठिनाइयाँ हुई, इसका भी वर्णन वहाँ किया गया है। इस अध्याय में दासगणू की कीर्त्तन पद्धति का वर्णन होगा।

नारदीय कीर्त्तन पद्धति

बहुधा हरिदास कीर्त्तन करते समय एक लम्बा अंगरखा और पूरी पोशाक पहनते हैं। वे सिर पर फेंटा या साफा बाँधते हैं और एक लम्बा कोट तथा भीतर कमीज, कन्धे पर गमछा और सदैव की भाँति एक लम्बी धोती पहनते हैं। एक बार गाँव में कीर्तन के लिए जाते हुए दासगणू भी उपर्युक्त रीति से सज-धज कर बाबा को प्रणाम करने पहुँचे। बाबा उन्हें देखते ही कहने लगे, '' अच्छा! दूल्हा राजा! इस प्रकार बनठन कर कहाँ जा रहे हो?'' उत्तर मिला की ''कीर्तन के लिए ।'' बाबा ने पूछा कि कोट, गमछा और फेंटे इन सब की आवश्यकता ही क्या है? इनको अभी मेरे सामने ही उतारो । इस शरीर पर इन्हें धारण करने की कोई आवश्यकता नहीं है। दासगणू ने तुरन्त ही वस्त्र उतार कर बाबा के श्रीचरणों पर रख दिए। फिर कीर्तन करते समय दासगणू ने इन वस्त्रों को कभी नहीं पहना । वे सदैव कमर से ऊपर अंग खुले रखकर हाथ में करताल और गले में हार पहन कर ही कीर्तन किया करते थे। यह पद्धति यद्यपि हरिदासों द्वारा अपनाई गई पद्धति के अनुरुप नहीं है, परन्तु फिर भी शुद्ध तथा पवित्र है। कीर्त्तन पद्धति के जन्मदाता नारद मुनि कटि से ऊपर सिर तक कोई वस्त्र धारण नहीं करते थे। वे एक हाथे में वीणा ही लेकर हरि-कीर्त्तन करते हुए त्रैलोक्य में घूमते थे।

श्री चोलकर की शक्कररहित चाय

बाबा की कीर्त्ति पूना और अहमदनगर जिलों में फैल चुकी थी, परन्तु श्री नानासाहेब चाँदोरकर के व्यक्तिगत वार्त्तालाप तथा दासगणू के मधुर कीर्त्तन द्वारा बाबा की कीर्त्ति कोकण (बम्बई प्रांत) में भी फैल गई । इसका श्रेय केवल श्री दासगणू को ही है। भगवान् उन्हें सदैव सुखी रखे। उन्होंने अपने सुन्दर प्राकृतिक कीर्त्तन से बाबा को घर-घर पहुँचा दिया । श्रोताओं की रुचि प्रायः भिन्न -भिन्न प्रकार की होती हैं । किसी को हरिदासों की विद्वत्ता, किसी को भाव, किसी को गायन, तो किसी को चुटकुले तथा किसी को वेदान्त-विवेचन और किसी को उनकी मुख्य कथा रुचिकर प्रतीत होती है। परन्तु ऐसे विरले ही हैं, जिनके हृदय में संत-कथा या कीर्त्तन सुनकर श्रद्धा और प्रेम उमड़ता हो । श्री दासगणू का कीर्तन श्रोताओं के हृदय पर स्थायी प्रभाव डालता था। एक ऐसी घटना नीचे दी जाती है।

एक समय ठाणे के श्री कौपीनेश्वर मन्दिर में श्री दासगणू कीर्तन और श्रीसाईबाबा का गुणगान कर रहे थे। श्रोताओं में एक चोलकर नामक व्यक्ति, जो ठाणे के दीवानी न्यायलय में एक अस्थायी कर्मचारी था, भी वहाँ उपस्थित था। दागसणू का कीर्तन सुनकर वह बहुत प्रभावित हुआ और मन ही मन बाबा को नमन कर प्रार्थना करने लगा कि '' हे बाबा ! मैं एक निर्धन व्यक्ति हूँ और अपने कुटुम्ब का भरण-पोषण भी भली भाँति करने में असमर्थ हूँ । यदि मैं आपकी कृपा से विभागीय परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया तो आपके श्रीचरणों में उपस्थित होकर आपके निमित्त मिश्री का प्रसाद बाँटूँगा''। भाग्यने पल्टा खाया और चोलकर परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया। उसकी नौकरी भी स्थायी हो गई । अब केवल संकल्प ही शेष रहा। ''शुभस्य शीघ्रम ।'' श्री चोलकर निर्धन तो था ही और उसका कुटुम्ब भी बड़ा था। अतः वह शिरड़ी यात्रा के लिए मार्ग-व्यय जुटाने में असमर्थ हुआ। ठाणे जिले में एक कहावत प्रचलित है कि '' नाणे घाट व सह्याद्रि पर्वत श्रेणियाँ कोई भी सरलतापूर्वक पार कर सकता है, परन्तु गरीब को उंबर घाट (गृह-चक्कर) पार करना बड़ा ही कठिण होता है ।'' श्री चोलकर अपना संकल्प शाघ्रातिशघ्र पुरा करने के लिये उत्सुक था । उसने मितव्ययी बनकर अपना खर्च घटाकर पैसा बचाने का निश्चय किया। इस कारण उसने बिना शक्कर की

चाय पीना प्रारम्भ किया और इस तहर कुछ द्रव्य एकत्रित कर वह शिरड़ी पहुँचा। उसने बाबा का दर्शन कर उनके चरणों पर गिरकर नारियल भेंट किया तथा अपने संकल्पानुसार श्रद्धा से मिश्री वितरित की और बाबा से बोला कि आपके दर्शन से मेरे हृदय को अत्यंत प्रसन्नता हुई है। मेरी समस्त इच्छाए तो आपकी कृपादृष्टि से उसी दिन पूर्ण हो चुकी थीं। मस्जिद में श्री. चोलकर का आतिथ्य करने वाले श्री बापूसाहेब जोग भी वहीं उपस्थित थे। जब वे दोनों वहाँ से जाने लगे तो बाबा जोग से इस प्रकार कहने लगे कि '' अपने अतिथि को चाय के प्यालेमें अच्छी तरह शक्कर मिलाकर देना।'' इन अर्थपूर्ण शब्दों को सुनकर श्री. चोलकर का हृदय भर आया और असे बड़ा आश्चर्य हुआ। उनके नेत्रों से अश्रु-धाराएँ प्रवाहित होने लगीं और वे प्रेम से विह्वल होकर श्रीचरणों पर गिर पड़े। श्री. जोग को '' अधिक शक्कर सहित चाय के प्याले अतिथि को दो'' यह विचित्र आज्ञा सुनकर बड़ा कुतूहल हो रहा था कि यथार्थ में इसका अर्थ क्या है? बाबा का उद्देश्य तो श्री. चोलकर के हृदय में केवल भक्ति का बीजारोपण करना ही था। बाबा ने उन्हें संकेत किया था कि वे शक्कर छोड़ने के गुप्त निश्चय से भली भाँति परिचित हैं।

बाबा का यह कथन था कि '' यदि तुम श्रद्धापूर्वक मेरे सामने हाथ फैलाओगे तो मैं सदैव तुम्हारे साथ रहूँगा। यद्यपि मैं शरीर से तो यहाँ हूँ, परन्तु मुझे सात समुद्रों के पार भी घटित होने वाली घटनाओं का ज्ञान है। मैं तुम्हारे हृदय में विराजित, तुम्हारे अन्तःस्थ ही हूँ। जिसका तुम्हारे तथा समस्त प्राणियों के हृदय में वास है, उसकी ही पूजा करो। धन्य और सौभाग्यशाली वही हैं, जो मेरे सर्वव्यापी स्वरुप से परिचित हैं। '' बाबा ने श्री. चोलकर को कितनी सुन्दर तथा महत्त्वपूर्ण शिक्षा प्रदान की ।

दो छिपकलियों का मिलन

अब हम दो छोटी छिपकलियों की कथा के साथ ही यह अध्याय समाप्त करेंगे । एक बार बाबा मस्जिद में बैठे थे कि उसी समय एक छिपकली चिकचिक करने लगी। कौतूहलवश एक भक्त ने बाबा से पूछा कि '' छिपकली के चिकचिकाने का क्या कोई विशेष अर्थ है? यह शुभ है या अशुभ ?'' बाबा ने कहा कि '' इस छिपकली की बहन आज औरंगाबाद से यहाँ आने वाली है। इसलिए यह प्रसन्नता से फूली नहीं समा रही है।'' वह भक्त बाबा के शब्दों का अर्थ न समझ सका। इसलिए वह चुपचाप वहीं बैठा रहा।

इसी समय औरंगाबाद से एक आदमी घोड़े पर बाबा के दर्शनार्थ आया। वह तो आगे जाना चाहता था, परन्तु घोड़ा अधिक भूखा होने के कारण बढ़ता ही न था। तब उसने चना लाने को एक थैली निकाली और धूल झटकारने के लिए उसे भूमि पर फटकार तो उसमें से एक छिपकली निकली और सब देखते-देखते ही वह दीवार पर चढ़ गई। बाबा ने प्रश्न करने वाले भक्त से ध्यानपूर्वक देखने को कहा। छिपकली तुरन्त ही गर्व से अपनी बहन के पास पहुँच गई थी। दोनों बहनें बहुत देर तक एक दूसरे से मिलीं और परस्पर चुंबन व आलिंगन कर चारों ओर धूमधूम कर प्रेमपूर्वक नाचने लगीं। कहाँ शिरड़ी और कहाँ औरंगाबाद ? किस प्रकार एक आदमी घोड़े पर सवार होकर, थैली में छिपकली को लिए हुए वहाँ पहुँचता है और बाबा को उन दो बहिनों की भेंट का पता कैसे चल जता है - यह सब घटना बहुत आश्चर्यजनक है और बाबा की सर्वव्यापकता की द्योतक है।

शिक्षा

जो कोई इस अध्याय का ध्यानपूर्वक पठन और मनन करेगा, साईकृपा से उसके समस्त कष्ट दूर हो जायेंगे और वह पूर्ण सुखी बनकर शांति को प्राप्त होगा।

।। श्री सद्‌गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ।।